धरती का ध्रुवतारा

रचयित्री

महासती श्री कमलाकुमारी
"कमलप्रभा"

पुस्तक	-	धरती का ध्रुव तारा
दृढ़व्रती-सत्यवादी	-	हरिश्चन्द्र का चरित्र
रचयित्री	-	परम विदुषी, प्रवरचिन्तिका कमल प्रभाजी म. सा.
प्रकाशक	-	श्री श्वे. स्था. जैन स्वाध्यायी संघ गुलाबपुरा-३११०२१
सौजन्य	-	श्रीमान् सुमेरचन्द छाजेड़, गुलाबपुरा श्रीमान् शोभागसिंह चौधरी, गुलाबपुरा श्रीमान् भैंरूलाल छाजेड़, गुलाबपुरा श्रीमती-गुप्त श्रीमती-गुप्त
प्रथमावृत्ति	-	जनवरी २००१ १००० प्रतियां
मूल्य	-	२५) रुपए लागत मात्र
मुद्रक	-	स्वस्तिक ऑफसेट प्रिन्टर्स एस. बी. बी. जे. के सामने, मिल रोड़ बिजयनगर-अजमेर ☎ 30962

प्रकाशकीय

प्रश्न व्याकरण सूत्र में कहा है- 'सच्चं खु भगवं' अर्थात् सत्य ही भगवान है। इसलिए प्रभु ने आज्ञा दी कि हे मानव! तू एक मात्र सत्य को ही अच्छी तरह जान ले और सत्य में ही धृतिकर उसी में स्थिर हो जा।

जो मेधावी साधक सत्य की आज्ञा में उपस्थित रहता है, वह मृत्यु के प्रवाह को तैर जाता है। असत्य अविश्वास का कारण है, इसलिए प्रभु ने उसे त्यागने और सत्य को ग्रहण करने के लिए कहा है। सत्य से कथनी और करणी में-अन्दर और बाहर मे एकरूपता आती है, इसलिए-सच्च सग्ग द्दारं सच्च सिद्धीइ सोपाणं-सत्य को स्वर्ग का द्वार और सिद्धि का सोपान कहा है। निश्छल सत्य पूर्ण शक्तिमान होता है। शक्ति और सामर्थ्य धारण करने के लिए उसे जीने की आवश्यकता है-बजाय कथन करने के।

प्राचीनकाल से लेकर अर्वाचीनकाल तक अनेक ऐसे महापुरुष हुए हैं जिन्होने सत्य पर अपने प्राण न्यौछावर कर दिए। उन्होंने अपना सर्वस्व उत्सर्ग करके भी सत्य-मार्ग का उल्लंघन नहीं किया। ऐसे सत्यवादियों-सत्य के प्रयोक्ताओं मे सदैव निर्भीकता रही है, अहिंसकता रही है।

महाराज हरिश्चन्द्र ऐसे ही सत्यवादी पुरुष थे जिन्होंने सत्य का अवलवन लेकर, फिर प्रलोभनों से या भयवशात् उसका त्याग नहीं किया। वे स्वयं बिक गए, उनकी पत्नि तारा भी बिक गई, राज-पाट चला गया, सुख वैभव के सभी साधन विलीन हो गए, किन्तु उन्होंने सत्य का आधार नही त्यागा। ऐसे दृढव्रती महापुरुषों के लिए ही कहा गया है कि-चन्द्र टरै, सूरज टरे टरे जगत व्यवहार, "पै सत्यवादी हरिश्चन्द्र को टरै न सत्यविचार" ऐसे पुण्य श्लोक, सत्यवादी महापुरुष का गुणगान सदा से होता आया है, वर्तमान में भी हो रहा है एवं भविष्य मे भी-सदैव उनकी गौरव-गाथा गाई जाती रहेगी।

इस गौरव-गाथा के साथ काव्यात्मकता का यदि मेल हो जाय तो सोने में सुगंध आ जाती है। गेयतत्व का मेल होने के कारण उसकी प्रभावोत्पादकता द्विगुणित होकर पाठक व श्रोता के मन पर स्थायी असर कर जाती है।

प्रस्तुत काव्यात्मक कथा के कथाशिल्पी है परम विदुषी, वरिष्ठ चिन्तिका कवि-हृदया कमलप्रभा जी म. सा., जिन्होने विक्रमाब्द्ध २०५५ के गुलाबपुरा- चातुर्मास में इसकी रचना कर एवं अपने मधुर कंठ से प्रवचन के समय श्रवण करा कर श्रोताओं को भाव विभोर कर दिया। इस काव्य-कृति के माध्यम से भव्यजनों के दिलों में सत्य के प्रति निष्ठा जागृत हुई है, उनका मन मानवीय एवं संवेदनाओं से संपन्न बना है। प्रस्तुत कथानक में पूज्यनीया महासती जी म. सा. का दार्शनिक चिन्तन, हृदय की निष्कपटता के साथ मुखरित हुआ है, अतः हृदय और बुद्धिका का अपूर्व मेल इस कृति में बन सका है।

इससे पूर्व भी श्रद्धेया महासती जी ने भक्तिपूरित अनेक काव्य-कृत्तियां सुज्जनों को भेंट की है।

चातुर्मासावधि में गुलाबपुरा के धर्मप्रेमी बन्धुओ का विशेष आग्रह रहा कि प्रस्तुत रचना को शीघ्र प्रकाशित करवा कर सर्व जनसुलभ बनाया जाय। श्रद्धेया महासतीजी म. सा. के हम आभारी है कि जिन्होंने इस रचना को शीघ्र प्रकाशन-योग्य बनाया।

धर्मप्रेमी बन्धु, इस कृति मे लाभान्वित होकर सत्य-शील एवं त्याग व सेवा के मार्ग पर अग्रसर हो सकें? तथा अपने जीवन में उज्ज्वलता-निर्मलता ला सके, इसी शुभाकांक्षा से-

मंत्री
श्री श्वे. जैन स्वाध्यायी संघ
गुलाबपुरा

गुलाबपुरा
दि. २०-१-२००१

प्रस्तावना

काव्य का सृजन अन्तर के आनन्द को कागज के आंगन पर उतारना है। यह आंगन ऐसा है जिस पर कवि के साथ साथ श्रोता एवं पाठक का मन मयूर भी नृत्य करता हुआ चलता है। कवि अपने शब्दों के संसार में मानवीय मूल्यों की स्थापना में प्रयासरत रहकर अंधकार में उजाले की किरण बांटता है। वर्तमान युग में जीवन मूल्यों को बचाये रखने का संकट उपस्थित हो गया है। कवि एवं लेखक का यह उत्तरदायित्व हो गया है कि वह अपनी लेखनी से नये स्वप्न बुनकर सारे संसार में अखण्ड आत्मीयता का संवहन करे।

साहित्य विगत युग जीवन्त धरोहर होती है। युग बदलते हैं, राष्ट्र विखण्डित होते हैं। सीमाए बनती और बिगड़ती हैं। मौसम में परिवर्तन होता है, सागर का जल बड़वाग्नि से वाष्प बनकर सुदूर पर्वतों की घाटियों में बरसता हुआ पुनः सरिताओं के माध्यम से सागर में समाहित हो जाता है। परिवर्तन सृष्टि का नियम है। जो कल था वह आज नहीं है और जो आज है वह आने वाले कल में दिखाई नही देगा। कल जो था वह आज भी दिखाई दे रहा है तो वह है हमारा कर्त्तव्य, हमारे जीवन के शाश्वत मूल्य। सत्य अहिंसा, प्रेम, करुणा, ये ही तो मानव जीवन के मूल्य हैं, इनका पालन करना ही धर्म मार्ग पर बढ़ना है।

जीवन मूल्यों की रक्षा करने में साहित्य का महत्त्वपूर्ण योगदान है। इस भारत भूमि पर प्रत्येक युग में ऐसे दिव्य, तेजस्वी, यशस्वी

सत्पुरुष पैदा हुए हैं जिन्होंने कष्ट सहकर के भी जीवन मूल्यों को बचाये रखने में अपना अनुपम योगदान दिया है। उनकी गौरव गाथा को प्रत्येक युग के साहित्यकारों ने नये स्वर और शब्द देकर माँ वाणी के वाङ्मय में अनुपम अभिवृद्धि की है। आज का मनुष्य मनुष्यत्व से कुछ दूर चला गया है। स्वार्थ के दीमक ने सत्य के संसार को खोखला बना दिया है। सत्ता का आनंद मनुष्य को सत्य से दूर ले जा रहा है। सत्य से हटना स्वयं को ही नहीं सम्पूर्ण मान व जाति को पतन के गर्त में गिराना है। मनुष्य को मनुष्यत्व से साक्षात्कार कराने वाला साहित्य ही होता है, चाहे वह पद्य में हो या गद्य में। वर्तमान युग के आते आते हर वस्तु में संकुचन हो गया है। महाकाव्यों से चला साहित्य क्षणिका पर आकर ठहर गया लेकिन काल चक्र कभी रुकता नहीं है। वर्तमान में भी कई कवि लघु के साथ महत्त् काव्यों का भी सृजन भी कर रहे है। साहित्याकाश के उदीयमान नक्षत्रों में एक नाम जो विगत वर्षो में प्रकट हुआ वह है महासती कमलप्रभा जी। अपने अथक परिश्रम के बल पर गीत काव्यों की यह भागीरथी प्रबन्ध काव्यों के उदधि तट तक आ गई है। भारतीय वाङ्मय के गौरवशाली आख्यानों को नये शिल्प में ढालकर पुनः समाज को समर्पित करने में आज महती भूमिका प्रदान कर रही हैं। आंगन उतरी भोर के पश्चात् 'धरती का ध्रुव तारा' कृति की रचना आपकी सृजन यात्रा का दूसरा महत्त्वपूर्ण बिन्दु है।

महासती जी स्वयं जैन साध्वी हैं। अपने साध्वी धर्म का पूर्ण निर्वाह करते हुए जीवन के प्रति सार्थक सोच को काव्य में प्रकट किया है। जीवन से निष्क्रियता को हटाकर हर पल सक्रियता

धारण करना कोई आप से सीखे। देश, धर्म एवं समाज के प्रति आप में जो तड़फ है वह काव्य में दृष्टिगोचर होती रहती है, प्रकृति मनुष्य में सदैव सक्रिय रहने के भाव भरती है। प्रकृति को देखकर ही मनुष्य पराक्रम एवं पुरूषार्थ जगाता है, उसे निज कर्त्तव्य का बोध होता है। कवयित्री ने सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र के कथानक को एकादश किरणों में विभक्त करके प्रबन्ध काव्य की विशेषता का निर्वाह किया है। काव्य की प्रत्येक किरण पाठक को नया प्रकाश प्रदान करती है। शास्त्र परम्परा का पूर्णतः पालन करते हुए जहाँ मूल कथानक की रक्षा की वहाँ अपने कवि मन की उठती भावोर्मियों को नहीं रोका, यहीं उनकी सार्थक सर्जन धर्मिता प्रकट हुई है। एक प्रसिद्ध रागिनी को सामने रखकर काव्य के सेतु पर आप अनवरत आगे बढ़ी हैं। युग धर्म का निर्वाह करना रचना कार का धर्म होता है, यही कारण है कि कवयित्री ने राजा के स्वरूप का चित्रण करते हुए लोकतन्त्र में राजनेताओं की स्थिति का स्पष्ट निरुपण इस प्रकार किया है-

आज कहाँ वैसे राजा जो जनता का दुख जाने।
वेश बदल रजनी में घूमे सुख दुख पता लगाने जी॥



सत्ता लोलुप अनय के पोषक नेता जब से आये।
सुख और शांति जनजीवन में नजर नहीं है आये जी॥

भले भाड़ में जाय देश यह, मिले मिट्टी में शान।
लेकिन इनको तो है केवल निज कुर्सी का ध्यान जी॥

आज सम्पूर्ण विश्व के समक्ष पर्यावरण का संकट उत्पन्न हो

गया है। युग की पुकार से कवियित्री दूर नहीं हुई है। पर्यावरण सन्तुलन पर सभी नागरिकों से विचार करने हेतु लिखा है।

एक एक सिद्धान्त प्रभु का पर्यावरण बचाता।
अगर सभी जन चले उन्हीं पर रोग शोक हट जाता जी॥

कहा वीर ने वृक्ष न काटे, वृक्ष। न नीर बहाये।
गृहस्थ चले मर्यादा में तो आफत कभी न आये जी॥

यह काव्य सत्य-धर्म के प्रति आकर्षण उत्पन्न करने वाला प्रबन्ध काव्य है। सत्य इस समस्त जगत की आधार भूत शक्ति है। इस शक्ति के ही कारण सम्पूर्ण जगत गतिमान है। सत्य धर्म द्वारा मानव अन्तःकरण में पुरुषार्थ की प्रेरणा देने वाला यह काव्य पाठक के मन में पराक्रम का भाव भरने वाला है। यह काव्य पाठकों के हृदय में श्रेष्ठता भरकर शान्ति एवं प्रफुल्लता उत्पन्न करने वाला सिद्ध होगा। शान्त रस से ओत प्रोत धरती का ध्रुव तारा प्रबन्ध काव्य गिरते हुए जीवन मूल्यों को उठाने में सक्षम होगा इस का मुझे पूर्ण विश्वास है। प्राचीन कथानक के माध्यम से वर्तमान युग के मानव मन में यह काव्य नई स्फूर्ति, प्रेरणा, जिजीविषा के सुन्दर भावों का प्रवाह करेगा। कवयित्री ने सरल सुबोध एवं तत्सम शब्दावली द्वारा काव्य धारा को नई दिशा प्रदान की इस हेतु उन्हें शत शत साधुवाद। 'धरती का ध्रुव तारा' सहृदय पाठकों के मन का मुक्ताहार बने, इसी मंगल कामना के साथ।

डॉ. शशिकर खटका राजस्थानी
एम. ए. पी. एच. डी.

कवि कुटीर
बिजयनगर (अजमेर)
26 जनवरी 2001

अनुक्रमणिका

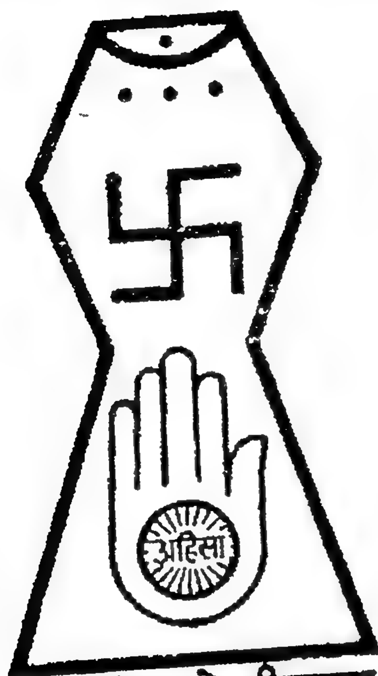
॥ जय गुरु पन्ना ॥ ॥ जय गुरु सोहन ॥ ॥ जय गुरु सुदर्शन ॥

卐 卐

स्वाध्याय संघ के आद्य प्रणेता

पूज्य प्रवर्त्तक गुरूदेव श्री पन्नालाल जी म.सा. की 116 वीं

जन्म जयन्ति के उपलक्ष में स्वाध्यायार्थ उपहार



मंगला चरण

गूँज रही संसार में, जिनकी जय जयकार ।
त्रिशलानन्दन वीर को, वन्दन बारम्बार ॥

श्री नानक, पन्ना गुरू, जिनशासन शृंगार ।
अद्यावधि जग मानता, उनका तो उपकार ॥

आचार्य श्री सोहन गुरु, गुरुवर्या जयवन्त ।
जिनके पुण्य प्रताप से, शासन है यशवन्त ॥

श्रद्धा अन्तर में लिए, लेय लेखनी हाथ ।
विनती है माँ शारदा, रहना तुम भी साथ ॥

रचना मंजिल पर तभी, पहुँच सके निर्बाध ।
गुरू-कृपा के साथ ही, पाऊँ आशीर्वाद ॥

क्या जग में जल के बिना, फसल हुई तैयार ? ।
गुरू-कृपा बिन क्या कभी, आते नये विचार ? ॥

शब्दों को सौरभ मिले, मिले सत्य को जीत ।
गुंजित है संसार में सत्य-धर्म के गीत ॥

हरिश्चन्द्र नृप धन्य है, बना सत्य पर्याय ।
युग पर युग बीते मगर, भूल नहीं जगपाय ॥

"कमलप्रभा" नर तन मिला, सत्य लीजिए धार ।
हरिश्चन्द्र की भांति ही, करिये निज उद्धार ॥



प्रथम किरण

सुपथ का संधान

धन्य हरिश्चन्द्र राजा, सत्य के हित छोड़ी स्त्री सुत, सम्पदा ॥टेर॥

मनुज सृष्टि है बड़ी निराली विचित्र इसका रूप ।
बने ग्रीष्म में छाया कोई, कोई बनता धूपजी ॥

पुष्प बिछाता कोई पथ में, बिखराता कोई शूल ।
ला मझधार में छोड़े कोई, कोई दिखाये कूल जी ।।

करे घाव पर मरहम कोई, कोई फेंके तीर।
बनकर आग जलाये कोई, कोई पिलाये नीर जी ॥

करे रोशनी जग में कोई, कोई तमस बढ़ाए।
पथ भटकाये कोई नर तो, कोई राह दिखाये जी ॥

कंटक और सुमन दोनों ही, साथ साथ है पलते ।
लेकिन रहे शूल नीचे ही फूल फूल गी पर फलते जी ॥

राम रावण, श्री कृष्ण कंस अरु गोशालक प्रभुवीर ।
दुष्ट दुष्टता भले करे ना सज्जन होय अधीर जी ॥

दुर्जन को क्या मिलता जग में ? तिरस्कार धिक्कार ।
सम्मान, स्नेह पाता है सज्जन बनकर भू शृंगार जी ॥

जो भी चले धर्म के पथ पर लेकर विनय विवेक ।
नत जहान उनके चरणों में जीवन जिनका नेकजी ॥
युगों युगों तक दिव्य चरित वे रहते ज्योतिर्मान ।
बलवान काल भी कर नहीं पाता उस छवि का अवसान जी ॥

कवि-रसना लेखक की लेखनी गुण उनके तो गाती ।
इतिहासों के पृष्ठों में वह गाथा अमर हो जाती जी ॥

अहो ! अहो !! सुरभित जीवन वे सुरभि सदा फैलाते ।
परमानन्द के पथ पर चल कर खुद ही पथ बन जाते जी ॥

यश तन तरुण रहे उनका तो बीते हजारों वर्ष ।
स्मृति होते ही मिले प्रेरणा तन मन व्यापे हर्ष जी ॥

उस अमर ज्योति की कथा कहूं जो हरिश्चन्द्र बन आई ।
सत्य धर्म पर वैसी अटलता यदा कदा ही पाई जी ॥

वह भी जीवन जीवन है क्या ? धर्म शून्य जो भाई ।
'धर्मेण हीना पशुभिः समाना' नीति रही है गाई जी ॥

धरा धर्म से टिकी हुई है इस सृष्टि में अब तक ।
आगे भी यह टिकी रहेगी धर्म रहेगा जब तक जी ॥

हरिश्चन्द्र की कथा से पहले आओ चिन्तन करले ।
क्या स्वरूप है इस सृष्टि का बात हृदय में धर ले जी ॥

लोकालोक रूप में संसृति दो भागों में विभक्त ।
आगम ग्रन्थों में वर्णित है अर्हत् द्वारा व्यक्त जी ॥

धर्माधर्माकाशकाल पुद्गल और छट्ठा जीव ।
षड्द्रव्यों से लोक बना है इसी में उसकी नींव जी ॥

बहुत बड़ा है अलोक जिसमें एक द्रव्य आकाश ।
गति, स्थिति का काम नहीं, नहीं पुद्गल जीव निवास जी ॥
लोक बहुत छोटा अलोक से फिर भी वह विशाल ।
सर, सरिता, सागर, द्वीपों का बिछा हुआ जहाँ जाल जी ॥
वन, उपवन, नग, निर्झर, षड् ऋतु, रवि, शशि और सितारे ।
मात्र लोक में ही दिखते ये हमको विविध नजारे जी ॥
असंख्य द्वीप है लोक में जिसमें जम्बू एक कहाये ।
यद्यपि सबसे छोटा है पर महिमा कही न जाये जी ॥
लक्ष योजन का लम्बा चौड़ा थाली सा आकार ।
पूर्णिमेन्दुवत् वह लगता है हमको गोलाकार जी ॥
लवण समुद्र से घिरा हुआ वह चारों ओर से भाई ।
भरत क्षेत्र इक उसमें प्यारा कर्मभूमि कहलाई जी ॥

तर्ज – गढ़ चित्तौड़

देव जन्म जहाँ लेने को ललचाये ।
उस भारत की अब आओ महिमा सुनाये ॥ टेर॥
यह भारत भू है सत्य, अहिंसा वाली ।
यह वसुंधरा है नाना रत्नों वाली ॥
कहो ऐसी पावन मिट्टी और कहाँ है?
कण कण इसका तो सुरभित और महा है ।
यह ऋषि मुनियों की जन्मदात्री कहलाये ।
उस भारत की अब आओ महिमा सुनाये ॥

1 पहाड

छह छह ऋतुयें यहाँ मेले सदा लगाती ।
रवि किरणें आकर सबको नित्य जगाती ॥

गंगा का निर्मल जल जो कलकल बहता ।
जन जन जग का तो उसको अमृत कहता ॥

स्वर्ग से बढ़कर धरती जो कहलाये ।
उस भारत की अब आओ महिमा सुनाये ॥

भक्ति, शक्ति का संगम ऐसा कहाँ है ?
सिंदूरी संध्या ऐसी भोर कहाँ है ?

सावन की घोर घटायें और कहाँ है ?
स्वागत में बोले ऐसे मोर कहाँ है ?

प्रकृति की सुषमा जिसकी नयन लुभाये ।
उस भारत की अब आओ महिमा सुनाये ॥

पयद पयोधि से उठ रिमझिम बरसे ।
सतरंगी बादल देख हृदय नित हरसे ॥

पचरंगी पहन परिधान धरा मुस्काती ।
हो हर्षित पाटल डाल प्रसून खिलाती ॥

प्रकृति छटा जिससी कहाँ और दिखाये ।
उस भारत की अब आओ महिमा सुनाये ॥

है अवनि यह अरिहंत, सिद्ध, संतों की ।
जीवन संवरे कई भू यह उन पंथों की ॥

राजा श्रेष्ठी भी वैभव तज मुनि बनते ।
तप से धो तन मन कर्म प्रक्षय वे करते ॥

त्याग सेवा का सुपथ जो बतलाये ।
उस भारत की अब आओ महिमा सुनाये ॥

ऐसी पावन यह भू भारत की भाई ।
जिह्वा से शोभा उसकी कही न जाई ॥

कौशल जनपद है उसमें एक अति सुन्दर ।
वैभवशाली जन रहते उसके अन्दर ॥

धन धान्य जहाँ की वसुधा क्रोड़ छिपाये ।
उस भारत की अब आओ महिमा सुनाये ॥

पूर्ववत्

इसी भरत में कोशल जन पद सदा रहा विख्यात ।
राजधानी अयोध्या इसकी है ग्रन्थों से ज्ञात जी ॥

सरयू तट पर बसी यह नगरी पवित्र धरा है प्यारी।
दिव्य चरित कई दिए हैं इसने सुखकारी यशधारी जी ॥

आस पास नगरी के बाहर सुन्दर ताल तलैया ।
जिनके अन्दर हंसों के संग तेरे सुन्दर नैया जी ॥

जल जन्तु उन जलाशयों में करते नित्य किलोले ।
मछली, कच्छ, मंडूक, सरीसृप रह-रह उनमें डोले जी ॥

नगर बहि जो बाग बगीचे मनको मोहित करते ।
कृत्रिम झरने झर झर झर झर सदा ही उनमें झरते जी ॥

आम्र निम्ब जामुन आदि के वृक्ष छाँव फैलाये ।
नगर निवासी नित्य रमण को चले वहाँ पर आये जी ॥

सुमनों की सौरभ बिखराये जूही और चमेली ।
मधुप झुंड में उड़े कहीं तो तितली कहीं अकेली जी ॥
इसी अवध में समय-समय हुए सूर्यवंशी कई भूप ।
यश, वैभव, गुण गरिमा में वे बढ़कर हुए अनूप जी ॥
पीढ़ी सताइस पूर्व राम से हुये यहाँ एक भूप ।
हरिश्चन्द्र नाम है उनका मनहर सुन्दर रूप जी ॥
शान्तिनाथ शासन में जो वह फूल खिला गुणधारी ।
अवधपुरी की धरा को मानो रत्न मिला सुखकारी जी ॥
आज भी सौरभ, कान्ति उसकी भू पर है विद्यमान ।
श्रमण और वैदिक संस्कृतियाँ गाती है गुणगान जी ॥
युग बदले, भाषा बदली पर कवि जन आज भी गाये ।
मैंने सोचा क्यों न इसी पर अपनी कलम चलायें जी ॥
कुछ चरित्र ऐसे होते जो बन जाते पहचान ।
उनकी शिक्षाओं से हेता जीवन का उत्थान जी ॥
जब-जब चले सत्य की चर्चा नाम जिह्वा पर आये ।
हरिश्चन्द्र ने सत्य धर्म हित कितने कष्ट ठाये जी ॥
लक्ष्य प्राप्ति क्या कर पाये जो कष्टों से घबराये ।
जल में जो उतरा न कदापि तैर वह क्या पाये जी ॥
तपने पर ही फूल इत्र और सोना कुन्दन बनता ।
भू के तपने पर ही नीरद आकर यहाँ बरसता जी ॥
नृप के सम नृप ही था अवध में कोई न उस समकक्ष ।
धर्ममूर्ति उस महाभाग का उज्ज्वल था हर पक्ष जी ॥

तन ही नहीं मन भी सुन्दर था सबको सुख उपजाता ।
दीन दुखी निर्धन अनाथ पर करुणा रस बरसाता जी ॥
स्वयं महल में वैभव भोगे जन हित को विसराये ।
है धिक्कार अनेकों उसको कष्ट प्रजा जहाँ पाये जी ॥
दुःख प्रजा के विस्मृत कर जो बने भोगों का कीड़ा ।
मर कर पर भव में वह पाता नरकों जैसी पीड़ा जी ॥
युगों-युगों से रही व्यवस्था सुख समाज यह पाये ।
एक बने मुखिया जनता का शासक धर्म निभाये जी ॥
राजसिंहासन को सुमनों की शय्या कभी न मानो ।
अरे शासको! इसको तुम तो शर शय्या ही जानो जी ॥
निज कर्त्तव्य भुला करके जो सुख सत्ता का चाहे ।
उनके शासन में जनता तो भरती है बस आहें जी ॥
आज कहाँ वैसे राजा जो दुख जनता का जाने ।
वेश बदल रजनी में घूमे सुख दुख पता लगाने जी ॥
आज के राजा वोट लेने को भले ही घर घर जाये ।
लेकिन बना काम बस फिर नहीं याद उन्हें कोई आये जी ॥
सत्ता लोलुप अनय के पोषक नेता जब से आये ।
सुख और शांति जन जीवन में नजर नहीं है आये जी ॥
अपनी काली करतूतों से मान नहीं ये पाते ।
शर्महीन देखो ये कैसे फिरते हैं इतराते जी ॥
तस्कर, डाकू, चोर, लुटेरे कल तक थे जो मारे ।
गूंज रहे उनसे तो भाई सत्ता के गलियारे जी ॥

चोरों का सरदार उन्हें कह करके जनता पुकारे ।
जिन्दाबाद के स्थान पर लगते मुर्दाबाद के नारे जी ॥

भाषण देना मात्र जानते रहे कर्त्तव्य से दूर ।
देश, धर्म, संस्कृति से इनको कहां प्रेम भरपूर जी ॥

भले भाड़ में जाय देश यह, मिले मिट्टी में शान ।
लेकिन इनको तो है केवल निज कुर्सी का ध्यान जी ॥

पेट पेटियाँ भरने में ही लगे रहते ये भ्रष्ट ।
ऐसे स्वार्थी नेताओं से जनता पाती कष्ट जी ॥

सच है वही भूप कर सकता जन-मन में निवास ।
निज सत् कर्मो के द्वारा जो फैलाये उल्लास जी ॥

हरिश्चन्द्र ऐसा ही नृप था हर युग गाता गान ।
जन जन का था प्राण दुलारा देश धर्म की शान जी ॥

सम्पूर्ण अयोध्या को अपने इस नृपति पर था नाज ।
काश! वैसा ही भूपति भारत भू पर आये आज जी ॥

हवा एक सी रहे न हरदम परिवर्तन है आता ।
सुपथ पर चलने वाला भी कभी भ्रमित हो जाता जी ॥

शोणप्रस्थ नृप देवरात की सुता नाम था तारा ।
हरिश्चन्द्र ने रानी रूप में, उसको था स्वीकारा जी ॥

गौरवर्ण, परिपुष्ट देह पर वसन रेशमी सुन्दर ।
स्वर्णिम भूषण से भूषित तन, हीरे जड़े हैं अन्दर जी ॥

बालों की लट नागिन सम सीने पर थी लहराती ।
कोमल कलिका लगी जूही की शोभा अधिक बढ़ाती जी ॥

सुरभित जल से न्हा कर रानी जब-जब बाहर आती ।
संस्पर्शित हो पवन भी उससे सौरभमय बन जाती जी ॥

जब से नृप ने रानी पाई रंगा वासना रंग में ।
बन भ्रमर मंडराता रूप पर, रह प्रिया के संग में जी ॥

आठ प्रहर महलों में रह कर उसकी छवि निहारे ।
रूप जाल में फंस कर उनने निज कर्त्तव्य विसारे जी ॥

दिन, सप्ताह, महीने बीते पर महल छोड़ नहीं जाये ।
रहूँ देखता चन्द्रमुखी को यही भूप मन भाये जी ॥

कामुक दिल की रेणु सम ना बुझती कभी भी प्यास ।
लेकिन सत्य मानना भाई वासना करे विनाश जी ॥

बुरी दशा हो गई अवध की जब से रानी आई ।
प्रजा जनों ने महाराज की देखी नहीं परछाई जी ॥

सचिव आदि भी अन्तःपुर में कभी न जाने पाये ।
इच्छा करके बढ़े अगर तो द्वारपाल लौटाये जी ॥

राजसेवक जनता को लूटे मिले न जन को न्याय ।
बिन उत्कोच दिए कोई भी काम नहीं हो पाय जी ॥

चोर-डकेतों की बन आई करे नहीं कोई खोज ।
जनता अपना दुख ले आए राजमहल में रोज जी ॥

लेकिन राजा रनिवास में सुन निराश हो जाए ।
महामंत्रीजी समझा समझा आये को लौटाए जी ॥

सोचे वह, मंत्री पद त्यागूं, निर्णय नृप को सुनाऊं ।
कब तक मैं इस दुखी प्रजा को बातों से बहलाऊं जी ॥

यद्यपि भूला भूप रूप में क्या कर्त्तव्य है मेरा ।
लेकिन महारानी के मन में अब भी नहीं अंधेरा जी ॥
एकदा सुमन शय्या पर बैठे कली दिखी मुरझाई ।
कल तक यह कितनी सुन्दर थी हँस मैंने अपनाई जी ॥
एक रात्रि में ही कुम्हलाकर कर लिया अपना अंत ।
जीवन भी नश्वर इस भांति भूली मैं और कंत जी ॥
सुत रोहित भी बड़ा हो गया करे समझ की बात ।
नित उठ करके तात-मात को वह झुकाये माथ जी ॥
सोच रही रानी इतने में मंत्रीजी वहाँ आये ।
आज्ञा नहीं अन्तःप्रवेश की सेवक यों बतलाये जी ॥
द्वारपाल! संदेश मेरा तुम महाराज को दे दो ।
महामंत्री ने पद त्यागा है जाकर अंदर कह दो जी ॥
क्रोधभरी आवाज तेज कानों में पड़ी सुनाई ।
कौन जोर से बोल रहा है? रानी बाहर आई जी ॥
अरे! आज आना हुआ कैसे? महामंत्रीजी बोलो ।
गायब क्यों मुस्कान वदन की? बात हृदय की खोले जी ॥
अभिवादन कर महामंत्री ने सुनादी सारी बात ।
चिंता में पड़ गई रानी भी हुई प्रातः से रात जी ॥
बोली वह मेरे कारण नहीं नृप तजते रनिवास ।
कल उनको तजना ही होगा रखें आप विश्वास जी ॥
कर आश्वस्त स्नेह से उसने महासचिव लौटाया ।
लेकिन प्रजा दुखी है जान कर दिल उसका दुख पाया जी ॥

लगी सोचने मेरे मोह में, अटका प्रिय का चित्त ।
तो फिर मुझे जागना होगा मैं हूँ अगर निमित्त जी ॥
गुरु से शिक्षा पाई मैंने खोना नहीं विवेक ।
शूल नहीं चुभता उसके जो चलता पथ को देख जी ॥
मोह निद्रा टूटे स्वामी की ऐसा करूं उपाय ।
सर्प मरे ना लाठी टूटे कार्य सहज बन जाय जी ॥
पुरुष दर्प ने सदा नारी को केवल भोग्या जाना ।
लेकिन जब-जब जगी नारी तो लोहा सबने माना जी ॥
नारी मात्र नारी ही नहीं है नारी रूप अनेक ।
'कार्येषु मंत्री' बन कर वह सलाह देती नेक जी ॥
गृहकार्यों में दासीवत् वह श्रम कर भी हरसाती ।
भोजन वेला में माँ सम वह पति को प्यार लुटाती जी ॥
शयन कक्ष में रंभा बन स्वामी को वह रिझाती ।
स्वयं धर्ममय जीवन जी कर पति को मार्ग सुझाती जी ॥
धिक्कार उसे है नारी को नागिन सम जो बतलाते ।
पैरों की जूती कह करके उसका महत्त्व घटाते जी ॥
नर व नारी बुरे न जग में बुरी वासना जानो ।
जो भी डूबा इसके अन्दर बर्बाद जिन्दगी मानो जी ॥
प्रियतम को मैं पथ पर लाऊं रानी करे विचार ।
मेरे ही कारण उनके मन जागे सर्व विकार जी ॥
क्यों ना यह शृंगार तजूं जिसने प्रिय को भटकाया ।
सूर्यवंश की धवल कीर्ति को जिसने मलिन बनाया जी ॥

तप व त्याग का संबल ले स्वामी को पुनः जगाऊं ।
भारतीय नारी की शक्ति जगती को बतलाऊं जी ॥

अलंकार मैं सर्व उतारूं सुहाग सूचक छोड़ ।
राग, रंग, हास्यादि से लूं अपना मुँह मैं मोड़ जी ॥

बस फिर क्या था त्वरित रानी ने भूषण दिए उतार ।
वसन रेशमी हटाके सारे सादे लिए हैं धार जी ॥

जानबूझ कर निज चेहरा भी उसने खिन्न बनाया ।
देख बदलते तेवर उसको दासिवृन्द घबराया जी ॥

आकर पास दासियाँ बोली, स्वामिनी! क्या है कारण ?
परिवर्तन यह कैसा सहसा ? शंका करें निवारण जी ॥

हटो हटो क्या मतलब तुमको पास न मेरे आओ ।
मुझ मन में जो आग लगी है अधिकन उसे बढाओ जी ॥

रोष देख भयभीत हो गई चुप हो हटी वे तत्क्षण ।
आज स्वामिनी रुष्ट हुई क्यों, बढ गई उनकी धड़कन जी ॥

उसी समय कुछ दौड़ दासियाँ भूप समीपे आई ।
राजन्! महल पधारो कहकर हाल दिया बतलाई जी ॥

सुनते ही नरपति दौड़ा निज सदन में सत्वर आया ।
दशा देखकर महारानी की सिर उनका चकराया जी ॥

अरे! आज महारानी ने क्यों ऐसा रूप बनाया ?
रुके श्वांस मेरी तो मानो लख आनन मुरझाया जी ॥

मधुर मधुर मुस्कान ओष्ठ की भाव भंगिमा प्यारी ।
प्यार बरसता जिन नयनों में उनमें क्यों चिनगारी जी ?

बोला-भूपति कहो प्रिये! क्यों वदन कमल कुम्हलाया ?
जीर्ण, मलिन वस्त्रों से आवृत्त क्यों यह सुन्दर काया जी ॥

दास दासी ने कहा क्या कुछ भी रानी! मुझे बताओ ।
अगर किसी ने की हो अवज्ञा वह भी स्पष्ट सुनाओ जी ॥

अनुचर वृन्द खड़ा है सारा कोई न बोले बोल ।
कहाँ भूल हुई हमसे निज निज मन वे रहे टटोल जी ॥

थर थर कॉप रहे सबके सब इक दूजे को ताके ।
दूर खड़े हैं मौन सभी वे अपना शीष झुकाके जी ॥

बड़े प्यार से रानी का मन राजा रहा टटोल ।
मुझ से ही हो गई भूल तो प्रिये! कहो दिल खोल जी ॥

नहीं मेरा अपमान हुआ है, कटु न कोई बोले ।
दास दासी तो ऐसे मेरे भ्रमर कमल पर डोले जी ॥

आप स्वयं दोषी हैं राजन्! स्पष्ट यदि बतलाऊं ।
अब तक झूठा प्रेम जताया खरी यदि कह जाऊंगी ॥

क्या कहती हो तारा! मैंने झूठा प्रेम दिखाया ।
प्रमाण एक भी वह बतलाओ जिसने यह दरसाया जी ॥

मुझको लगता किसी दुष्ट ने तुमको है बहकाया ।
तभी तुम्हारे मन पाटल पर शंका शूल उग आया जी ॥

जब से लाया तुम्हें महल में सबसे नाता तोड़ा ।
औरों से हट सम्बन्ध स्नेह का केवल तुमसे जोड़ा जी ॥

पागल होकर तुम छवि पर मैं राज काज तक भूला ।
आठों याम मैं रहा झूलता तेरे मोह का झूला जी ॥

तुमने कहा, किया नहीं मैंने एक भी काम बताओ ।
तन, मन, धन, न्यौछावर फिर क्यों असत् आरोप लगाओगी ॥

बस बस रहने दो स्वामी! नहीं आगे बात बढाओ ।
कभी न पूछा क्या इच्छा तब पूछा तो बतलाओ जी ॥

जैसा सोच रही हो मन में नहीं है कुछ भी वैसा ।
समझदार होकर के रानी! रोष उचित नहीं ऐसा जी ॥

फिर भी चलो भूल यह मेरी भूल इसे पर जाओ ।
जो भी इच्छा हो मन में वह अभी मुझे बतलाओ जी ॥

जहाँ से भी उपलब्ध होगी मैं लाकर दूँगा तुझको ।
पूर्ण कामना करके ही विश्राम दूंगा मैं मुझको जी ॥

एक बार फिर सोचलो स्वामी! फिर मैं बात बताऊं ।
ऐसा न हो कि कहकर मैं मन ही मन पछताऊं जी ॥

वचन देता रानी! तुमको, यदि काम नहीं कर पाऊं ।
आकर के मैं इस महल में चेहरा नहीं दिखाऊं जी ॥

वचनबद्ध कर कहे वह, देखा सपने में मृगबाल ।
पुच्छ स्वर्णमय मुड़ी हुई थी सुन्दर उसकी चाल जी ॥

आंखें खुली त्वरित मेरी यह दृश्य देखकर नव्य ।
बस इच्छा यह राजमहल में लाये शिशु वह भव्य जी ॥

जब तक वह मृग देख न लूं मैं नयनों से साक्षात् ।
खाना-पीना, उठना, बोलना, अच्छा लगे न नाथ जी ॥

अरे! अरे! इतनी सी बात पर क्यों निज को तड़फाया ।
वैसे ही कह देती मुझको व्यर्थ हृदय कलपाया जी ॥

एक नहीं कई मंगवा दूं मृग जैसे भी तुम चाहो ।
तत्पर खड़े शताधिक सेवक क्यों चिन्ता मन लाओ जी ॥
नहीं नहीं मैं नहीं चाहूं यह अन्य करे कोई काम ।
लाना हो तो आप ही लायें वरना करें आराम जी ॥
मैं स्वयं ही लाकर दूंगा क्यों सोचो तुम इतना ।
इच्छा पूर्ण करूंगा तेरी, समय लगे चाहे जितना जी ॥
सच कहता हूँ कनक पुच्छमय अगर नहीं मृग पाऊं ।
अन्तःपुर में आकर रानी मुख मैं नहीं दिखाऊँ जी ॥
स्वामी! मृग वैसा ही लाना और न करे शिकार ।
सकल जीवों के प्रति हमारा रहे मृदुल व्यवहार जी ॥
रानी ने जो रंग बिखेरा आभा उसकी फूटी ।
झूंठी लेकिन पिलादी उसने स्वर्ण पुच्छ की घूंटी जी ॥
नश्वर तन पर मुग्ध हो स्वामी भूले निज कर्त्तव्य ।
लेकिन मुझ द्वारा प्रियतम की तन्द्रा यह हर्त्तव्य जी ॥
मोह-जाल कैसा देखो जो भूपति भी भरमाया ।
स्वर्ण पुच्छ का मृग शावक क्या कहीं किसी ने पाया जी ॥
भोर होते ही भूपति निकला ले मन में उमंग ।
मृग छोना लाना है मुझको चढ़ा एक ही रंग जी ॥
बढ़ा जा रहा चढ़ा अश्व पर नभ से बरसे आग ।
लू के झोंकें टकरा वपु से कहते जल्दी भाग जी ॥
कई दिनों पश्चात् आज नृप वन प्रांगण में आया ।
छटा निराली निरख वहाँ की मन उनका हरषाया जी ॥

हरे भरे वहाँ विटप खड़े हैं शोभा बड़ी निराली ।
फल-फूलों से लदी हुई कानन की हर डाली जी ॥

पथिकों का मन हर लेती है वन-वृक्षों की छाया ।
करूं यहाँ विश्राम सोचती थकी हुई कूर काया जी ॥

वृक्षों पर विहगों का मधुरिम कलरव देता सुनाई ।
उड़े तितलियाँ इतस्ततः कहीं राग मधुप सुखदाई जी ॥

सहस्त्ररश्मि का स्वागत करके मेदिनी भी मुसकाये ।
चहके चिड़िया, कोकिल गाये, सर में सरसिज छाये जी ॥

तभी दौड़ता झुण्ड मृगों का ताल किनारे आया ।
उन्हें देख कर स्वर्ण पुच्छ का रूप भूप मन छाया जी ॥

लगा निरखने हरिश्चन्द्र नृप हिरणों को उस बार ।
मन-इच्छित मृग महारानी का मिले मुझे प्रियकार जी ॥

भले भूपति अस्त्र शस्त्र से सुसज्जित हो आया ।
पर उनके नयनों में नेह पा, यूथ नहीं घबराया जी ॥

खार प्यार भीतर का कदापि छिपता नहीं छिपाये ।
देख शिकारी को पशु भागे, पंछी भी उड़ जाये जी ॥

पशु-पक्षी क्या वनस्पति भी भावों को पहचाने ।
छुईमुई को छूने पर ही लगती वह मुरझाने जी ॥

मृगदृग् अवलोकन कर नृपति मन में करे विचार ।
कैसी ऋजुता इन नेत्रों में निरखे बारम्बार जी ॥

किंचित् भी अभिमान नहीं है भरे स्नेह के प्याले ।
ऐसे लोचन देखे न मैंने मोहक और निराले जी ॥

शांत खड़े उन देख मृगों को हर्ष हुआ प्रभूत ।
हेम पुच्छ मृग पाने की मम इच्छा हो फलीभूत जी ॥

एक-एक को देखा गौर से, पर वैसा नहीं पाया ।
नव उमंग ले पुनः भूप ने आगे कदम बढ़ाया जी ॥

तरुवर झूम रहे मस्ती में पंछी करे किलोल ।
लिपट लतायें द्रुम शाखा से रही हवा में डोल जी ॥

दिव्य सरोवर निर्मल जल का नजर भूप को आया ।
जल विहगों की मनहर क्रीड़ा देख हृदय हरसाया जी ॥

सरस फलों से लदे जो पादप क्षुधा वहाँ भड़काये ।
पके पके फल पड़े धरा पर उठा उन्हें नृप खाये जी ॥

जो कुछ वन में मिलता खा पी आगे बढ़ता जाये ।
सघन विटप की छाँव तले नित राजा रैन बिताये जी ॥

सप्त दिवस यों निकल गये पर वैसा मृग नहीं पाया ।
हो हताश अब बैठ गया नृप पाँव न आगे बढ़ाया जी ॥

मन चाहा मृग नहीं पाकर नैराश्य भूप मन छाया ।
इतने दिन यों ही बीत गए पर काम नहीं बन पाया जी ॥

तभी अचानक बैठे बैठे ध्यान भूप को आया ।
अरे ऐसा मृग होता नहीं है, व्यर्थ ही मैं भरमाया जी ॥

कहते ही मैं निकल गया, नहीं सोचा, नहीं विचारा ।
निष्कारण ही भयद विपिन में भटका मारा मारा जी ॥

ऐसा सारंग मिले कभी ना ढूंढ़ भले संसार ।
जीवन खोदूं खोज में पर तो भी नहीं है सार जी ॥

मैं तो चलो मूढ हो मोह में सोच नहीं कुछ पाया ।
पर रानी ने ऐसे काम मे क्यों मुझको उलझाया जी ?

संभाव्य नहीं जो, याचित कर क्यों कष्ट में मुझको डाला ?
क्या रहस्य है इसके पीछे, मन में क्या कोई काला जी ?

मन भी मेरा नहीं मानता मुझे न चाहे रानी ।
बात न आई कुछ भी समझ में हुई बड़ी हैरानी जी ॥

विचार वीथि में बहुत देर तक रहा भटकता भूप ।
लगा उसे यह, मेरी दशा तो, इत खाई उत कूप जी ॥

उथल पुथल मन मची हुई है तभी ध्यान यह आया ।
अरे अरे रानी ने मुझको लगता है चेताया जी ॥

बुद्धिमती है महारानी विवेक मेरा ही सोया ।
राजा हूँ, कर्त्तव्य मेरे कुछ, मोह में भान यह खोया जी ॥

राजभवन की कारा में रह राज काज सब भूला ।
महारानी के रूप यौवन का रहा झूलता झूला ॥

स्वर्ण पुच्छ मृग का तो लगता केवल एक बहाना ।
इस माध्यम से शायद चाहे मुझे सुपथ पर लाना जी ॥

धन्य धन्य हैं हे महारानी! तूने तमस हटाया ।
तेरे इस रुख के पीछे का भाव समझ सब आया जी ॥





द्वितीय किरण

निज की पहचान

नारी पूजित है जहाँ, रमे देवता आन ।
नारी नारी ही नहीं, नारी घर की शान ॥

नारी से नर पूर्ण है, नर से पूरण नार ।
हर युग से दोनों बने, यहाँ सृष्टि आधार ॥

भक्ति, शक्ति अरु ज्ञान में, नर से कम नहिं नार ।
फिर भी अबला कहत है, कैसा यह संसार ॥

भक्ति जगत में ख्यात है, मीरा बाई नाम ।
विष तक उसने पी लिया, पाने को घनश्याम ॥

खड्ग धार कर में लिए, पहुँची अरिदल बीच ।
लक्ष्मीबाई ने धरा, दी शोणित से सींच ॥

गार्गी सी ज्ञानी हुई, प्रश्नों की बौछार ।
विद्वानों की वह सभा, चकित हुई उस बार ॥

जीजाबाई ने दिया, वीर शिवा को ज्ञान ।
प्रथम गुरु माता मेरी, किया सदा सम्मान ॥

माँ की शिक्षा धार उर, गांधी गए विदेश ।
संकल्पों पर दृढ़ रहे, माँ की कृपा विशेष ॥

जन्म घूंटिका साथ ही, माँ देती संस्कार ।
जीवन भर शिशु के लिए, बनते वे आधार ॥

पथ भूले पति को सदा, दिखलाती पथ नार ।
किस किस का लूं नाम मैं, भरा पड़ा संसार ॥

कमलावती ने स्वामी को दी ऐसी फटकार ।
करके शोधन आत्म का, जगे भूप इषुकार ॥

मयणरया को देखलो, नारी रत्न महान् ।
धर्म बोध पति को दिया, बना स्वर्ग मेहमान ॥

रथनेमी चंचल बना, राजमती को देख ।
लेकिन नत वह हो गया, सुना ज्ञान जब नेक ॥

सेवा, समता, शीलता धर्म श्रद्धा व त्याग ।
इनमें नारी का अधिक, सदा रहा है भाग ॥

नारी है यदि शिक्षिता, शिक्षित है परिवार ।
नारी पहली शिक्षिका, सुधिजन करो विचार ॥

महिमा जग गाता रहा, दिया न मन से प्यार ।
नारी को पूरा नहीं, मिला कभी अधिकार ॥

समझ भोग्या वस्तु इसे, करते विनिमय कार्य ।
सभ्य स्वयं को समझते, कैसे हैं ये आर्य ॥

नारी अब भी झेलती, युग के अत्याचार ।
बलात्कार, अपहरण से, भरे पड़े अखबार ॥

सह सह अत्याचार नित, हुई चेतना हीन ।
जिस घर की वह स्वामिनी, बनी वहीं पर दीन ॥

हीन भावना ग्रस्त है, अब भी नारी रत्न ।
एतदर्थ उसको यहाँ, करना होगा यत्न ॥
तारा के कारण हुआ, हरिश्चन्द्र को बोध ।
अन्तर्मन जागृत बना, किया जो असली शोध ॥
रानी तुझको धन्य है दिए नयन मम खोल ।
लौट चला निज नगर को, नरपति ऐसा बोल॥

पूर्ववत्

मुझे पहुँचना पास प्रिया के पर पहले यह जानूं ।
प्यारी प्रजा की दशा है कैसी घूम, देख पहचानूं जी ॥
वन में आया हूँ तो देखूं कैसे हैं वनवासी ।
कहीं उपेक्षित हो कर के वे हो न गये प्रवासी जी ॥
शत्रु जब जब भी चढ आये प्रथम ये ही टकराते ।
अपने स्वामी के हित हँसते हँसते रक्त बहाते जी ॥
अतः वन्य जाति की रक्षा भी कर्त्तव्य है मेरा ।
यही सोच कर नृप ने अपना अश्व उधर ही फेरा जी ॥
त्वरित तुरग को दुड़ा भूपति उसी प्रांत में आये ।
निज स्वामी को देख विपिन में वनवासी हरसाये जी ॥
दौड़ दौड़ नृप निकट सभी वे एक एक कर आये ।
फटे वसन विन पूछे ही हालत उनकी दरसायेजी ॥
अरे अरे क्यों बनी दशा यह कारण मुझे बताये ।
मैं सेवा में तत्पर हरपल कुछ भी नहीं छिपाये जी ॥

डरते डरते बोले वे, क्या स्वामिन् ! बात बताये ।
कहते कहते नयनों में तो अश्रु उनके छाये जी ॥

वन्य फूल, फल, काष्ठादि से अपना काम चलाये ।
लेकिन कर्मचारी वह भी तो हमसे लूट ले जायेजी ॥

महाराज की है यह आज्ञा कर पूरा ही लाये ।
जो इन्कार करे देने से वन से उन्हें भगाये जी ॥

निरा झूठ यह, कभी भी मैंने दिया नहीं आदेश ।
दण्ड मिलेगा उन दुष्टों को नृप बोला सावेश जी ॥

अब आगे से न्याय मिलेगा आप नहीं घबरायें ।
कष्ट कोई भी कर्मचारी दे आकर मुझे बताये जी ॥

आठों प्रहर द्वार जनता हित सदा खुले हैं मेरे ।
समझो हटा दिए महलों के मैंने आज से पहरे जी ॥

दे आश्वासन महीपति उनको आगे अश्व बढाये ।
घूम घूम वे जान रहे स्थिति जनता भी हरसाये जी ॥

सप्ताह एक फिर निकल गया यों सबसे मिलते जुलते ।
मेरे कारण प्रजा कष्ट में धिक् धिक् सोचे चलते जी ॥

राजकोष सम्पन्न मेरा पर दिया न मैंने ध्यान ।
तभी राज्य में दुख दारिद्र्य बन बैठे मेहमान जी ॥

कर्मचारी सब भ्रष्ट हो गये हुई व्यवस्था मैली ।
घर भरने में लगे दुष्ट ये अराजकता फैली जी ॥

अब सीधा दरबार में जाकर लूंगा लेखा जोखा ।
इन दुष्टों ने चला चवन्नी दिया प्रजा को धोखा जी ॥

खैर नहीं होगी अब इनकी खबर मैं जाकर लूंगा ।
जो जितना अपराधी होगा दण्ड उसे वह दूंगा जी ॥

यही सोचता हुआ भूपति आगे बढ़ता जाये ।
कर अवलोकन राज्य दशा का राजधानी वे आये जी ॥

तर्ज :– लावणी

अब आओ हालत रानी की बतलाये ।
वन भेज भूप को मन ही मन पछताये ॥ टेर॥
ओ पत्थर दिल ! क्या तूने गजब ढहाया ।
नयनों से प्रिय को तेने दूर हटाया ।
वस्तु भी याचित की है तूने ऐसी
जग ढूंढे तो भी मिले ने उनको वैसी ।
अब अकुलाहट रानी उर में है छाये
वन भेज भूप को मन ही मन पछताये ॥ १ ॥

ओह! कितना गहरा प्रेम स्वामी का मुझ पर
सुनते ही निकल पड़े वे वन के पथ पर ।
क्या खाते पीते कहाँ वे सोते होंगे ?
बिन स्वर्ण पुच्छ के दुःखित ही वे होंगे
हा! मेरे कारण स्वामी कष्ट उठाये
वन भेज भूप को मन ही मन पछताये ॥ २ ॥
यदि सिंह व्याघ्र व चोर सामने आये
वे परम वीर हैं उनसे नहीं घबराये ।

वैभव की गोद में पला है जीवन जिनका
कष्टों से पाला पड़ा कदापि न उनका ।
वन कष्ट सहेंगे कैसे मन अकुलाये
वन भेज भूप को मन ही मन पछताये ॥ ३ ॥
प्रियतम का हर पल प्यार मैंने तो पाया
ना निज नयनों से पलभर मुझे हटाया ।
कर्त्तव्य समझ कर मैंने दूर किया है ।
यह जानबूझ कर मैंने कष्ट दिया है ।
हे नाथ ! नाथ को शूल नहीं चुभ पाये
वन भेज भूप को मन ही मन पछताये ॥ ४ ॥

पूर्ववत्

मेरे कारण ही स्वामी ने पकड़ी दिशा अंधेरी ।
इसीलिए वन में भेजा था मजबूरी यह मेरी जी ॥

राज्य भार उन पर भारी पर मुझ मोह भूले भान ।
कर्त्तव्य बोध हित ही मैं ने करवाया वन-प्रस्थान जी ॥

मुझ निमित्त से कष्ट स्वामी को मुझे भी पश्चाताप ।
लेकिन मुझसे सुना गया नहीं जनता का संताप जी ॥

न चाहते भी नाथ ! आपको करना पड़ा है दूर ।
हित सबका इस में दरसाया हृदय न मेरा क्रूर जी ॥

प्रण करती हूँ नाथ ! न जब तक दर्शन दोगे आप ।
प्राय: मौन रहकर ही मैं तो जपूंगी जिनवर जाप जी ॥

भू पर ही अब शयन करूंगी अन्न का भी है त्याग ।
वैरागिन सा जीवन जीऊं छोड़ सकल रंग राग जी ॥

तभी बात वह याद आ गई , 'मृग लेने मैं जाऊँ ।
सोने का यदि नहीं मिला तो चेहरा नहीं दिखाऊं जी' ॥

वैसा तो मृग होता नहीं फिर कहाँ से वे लायेंगे ?
तो क्या सचमुच महलों में वे लौट नहीं पायेंगे जी ॥

काँप उठा रानी का कलेजा स्वेद वदन पे छाया ।
मन-पंछी तडफड़ा उठा अरु सिर उसका चकराया जी ॥

आंखों में छा गया अन्धेरा, धड़कन हो गई तेज ।
कैसा होगा जीवन की पुस्तक का अगला पेज जी ॥

अगर नहीं आये स्वामी क्या होगा आगे मेरा ?
पूनम की रजनी में भी तब होगा अमा अंधेरा जी ॥

मन न लगा अब रानी का उस वैभव भरे भवन में ।
कभी कुँज में, कभी भवन में, नींद न आये नयन में जी ॥

चिंता चित्त में हो तो कुछ भी अच्छा नहीं है लगता ।
अशांत मन तब केवल रह रह इधर उधर ही भगता जी ॥

आग अनोखी है यह चिंता जलती जीवित काया ।
तभी चिता से चिंता को है अधिक दुखद बतलाया जी ॥

दिन पर दिन निकल रहे हैं, पक्ष होने को आया ।
लेकिन कहाँ कैसे हैं वे नहीं समाचार तक पाया जी ॥

कहीं कहा वह कर न दिखादे महारानी घबराई ।
निकल महल से रोहित के संग कुंज कुटी में आई जी ॥

बड़ा सुहाना दृश्य कुंज का नाच उठे मन मोर ।
लेकिन वह भी लगे न अच्छा चिन्ता का जहाँ जोर जी ॥

बैठी है रानी सुत के संग भव्य कुंज के मांई ।
लेकिन छटा प्रकृति की दुःख दूर नही कर पाई जी ॥

विहगों का वह मधुर मधुर स्वर कभी जो मन बहलाता ।
आज वही चीं चीं चूं चूं का शोर नहीं सुहाता जी ॥

अरे पंछियो! बैठ डाल पर आज नही कुछ गाओ ।
स्वामी मेरे कहाँ है जल्दी पता लगा तुम आओ जी ॥

अरी पवन! मकरंद चमन का क्यों मुझ पर छिटकाती ।
आज सुमन सौरभ मुझको तो पलभर नहीं लुभाती जी ॥

सर लहरों को भले ही छू कर पास मेरे तू आई ।
लेकिन आग हृदय मुझ कैसी देख नहीं तू पाई जी ॥

अरी मल्लिके! मन करता मैं उन्हें ढूंढने जाऊं ।
मैंने ही वन भेजा उनको मैं ही मना कर लाऊंजी ॥

स्वर्ण पुच्छ मय मृग नहीं होता जाकर उन्हें बताऊं ।
मेरा ध्येय इसके पीछे क्या ? जा करके समझाऊंजी ॥

दोहा

एक बार मैं देख लूं, महलों का क्या हाल ।
भेजा जंगल में मुझे, क्या रानी की चाल ?



पूर्ववत्

जल्दी जल्दी कदम उठाकर भूप महल में आया ।
लेकिन नहीं देख रानी को मन ही मन झुंझलाया जी ॥

सूना सूना कैसे महल यह इधर उधर नृप झांके ।
दौड़ दासियों ने नृपति को नमन किया है आके जी ॥

पूछा भूप ने अहो सेविके ! रानी कहाँ बताओ ?
रंग भवन भी उदास दिखता कारण क्या समझाओजी ॥

हाथ जोड़ बोली वह दासी, नाथ ! कहूँ क्या बात ?
बिना आपके रानी सा तो डाली टूटा पात जी ॥

दासी मल्लिका के संग ही वे अपना समय बिताये ।
गये आप तब से ही वे तो भोजन भी नहीं पाये जी ॥

अभी कहाँ पर मुझे बताओ बोला नृप घबराकर ।
सुध बुध लूं पहले मैं उसकी त्वरित वहाँ पर जाकर जी ॥

तरु अशोक के नीचे राजन्! बैठी होगी रानी ।
मात्र आपका सुमरण करती भर आंखों में पानी जी ॥

उल्टे पावों चलकर राजा बगिया में तब आया ।
ओढ उदासी बैठी देखी तारा को तरु छाया जी ॥

सूनी सूनी आँखें उसकी, आनन भी मुरझाया ।
अल्प समय में ही ऐसी क्यों हो गई कृश यह काया जी ॥

दशा अगर यह मेरी होती तो भी समझ कुछ आता ।
क्योंकि वन में कहाँ वह सुविधा घर में जो नर पाता जी ॥

वनफल खाकर भी मेरा तन इतना हुआ न क्षीण ।
लेकिन महलों मे रहकर भी दशा है इसकी दीन जी ॥

महारानी सच शीलवती है संशय नहीं है इसमे ।
अगर प्रेम नहीं होता मुझ प्रति तो क्यों कृशता तन मे जी ॥

ऐसी प्रिया को पाकर के मैं सचमुच हुआ निहाल ।
कर्त्तव्य क्षेत्र मे सदा रहेगी बन यह मेरी ढाल जी ॥

देख दूर से नृप को दासी त्वरित खडी वहाँ होती ।
नाथ आ गये महारानी सा बिखरे हर्ष के मोती जी ॥

नयन खोल रानी ने देखा प्रिय को खड़े है पाया ।
पुलक उठा तन मन उसका तो हर्ष हृदय में छाया जी ॥

उठकर त्वरित रानी तारा ने छुए स्वामी के पैर ।
नाथ ! आपको आने मे क्यो इतनी लगी है देर जी ॥

यद्यपि दिल तड़फा तारा का बात करूं दिल खोल ।
लेकिन भय है देख स्नेह मम, मन नही जाये डोल जी ॥

हर्ष प्रभूत हुआ रानी को लेकिन उसे दबाया ।
प्रेम पाश में पड़े पुनः नही, निज को त्वरित जगाया जी ॥

अगर मोह में फंस प्रियतम फिर से कर्त्तव्य भुलाये ।
तो इतने दिन की जो तपस्या, व्यर्थ मेरी वह जाये जी ॥

अतः छिपाकर खुशी को भीतर तारा बोली नाथ !
जिस हित भेजा वन में आपको बनी न क्या वह बात जी ?

हेम पुच्छ का मृग कब देखूं तरस रही मम आंखें ।
पहुँच जाती ये पास आपके अगर जो होती पाँखें जी ॥

अरे रानी! होकर भी विज्ञा नासमझी की बातें ।
शूलभरी कर डाली तूने अपनी मधुमय रातें जी ॥

स्वर्ण पुच्छ मृग होता है क्या स्वप्न ही झूठा आया ।
पागल होकर तेरी छवि पर मोह में मैं भरमाया जी ॥

कहते ही मैं निकल पड़ा था सोचा नहीं विचारा ।
अन्न पानी का नहीं ठिकाना फिरा था मारा मारा जी ॥

आप विदुषी हैं महारानी तज दे यह जंजाल ।
स्वर्ण पुच्छ का अब आगे से व्यर्थ न उठे सवाल जी ॥

रहने दीजिए इन बातों में कुछ भी नहीं धरा है ।
देख लिया है प्रेम आपका छल व कपट भरा है जी ॥

अगर नहीं वैसा मृग तो कर देते तभी इनकार ।
दे आश्वासन क्यों दिखलाया मुझको झूंठा प्यार जी ॥

अरे झूंठ की बात कहाँ है था मैं प्रेम में अंध ।
वासना वासित चित्त होने से , सोच शक्ति थी मंद जी ॥

सखी मल्लिके ! उठो चलो अब अपने महल में जाये ।
शांतिनाथ का भजन करें बस आश न और लगायें जी ॥

मात्र गरजने वाला पयद जो प्यास बुझा कब पाये ?
स्वर्ण पुच्छ मृग लाए बिना ही स्वामी लौट यहाँ आये जी ॥

इतना कहकर रानी तारा चली सखी के संग ।
देख उसे यों जाते नृपति रह गया मन में दंग जी ॥

अरी सुनो, ठहरो महारानी हठ यह उचित नहीं है ।
स्वर्ण पुच्छ मय मृग धरती पर देखा भला कहीं है जी ॥

कहता ही रह गया भूपति रुकी नही महारानी ।
पति वचन का तिरस्कार यह राजा ने मन ठानी जी ॥

उभर आई नयनों में लाली लगी कांपने काया ।
ओह ! इतना है अहं इसे जो वचन मेरा ठुकराया जी ॥

कितना मिथ्या कहा दासी ने जोहती रानी बाट ।
क्रोध के कारण हरिश्चन्द्र ने होंठ लिए थे काट जी ॥

नारी होकर यह उपेक्षा जरुरत इसे न मेरी ।
तो फिर नर होकर मैं भी क्यो रखूं अपेक्षा तेरी जी ॥

गरज करूं ना हरगिज तेरी सोच लेना यह मन मे ।
बिना बुलाये पॉव न रखूं अब तो रंग भवन मे जी ॥

भरके क्रोध में उठा भूपति अपने भवन मे आया ।
भोजन लेकर आया दास जो नृप ने उसे लौटाया जी ॥

सोया सोया शय्या पर नृप करने लगा विचार ।
प्रथम बार देखा रानी का रूखा यह व्यवहार जी ॥

चलो वैसा मृग भले न पाया किन्तु सत्य पहचाना ।
राजधर्म जो भूल गया मैं निकल महल से जाना जी ॥

बंधकर नारी बाहु-पाश कर्त्तव्य भूला मैं अपना ।
पुनः सुधारुं दशा राज्य की पड़े चाहे अब तपना जी ॥

चिंतन ही चिंतन में नृप को निद्रा ने आ घेरा ।
खुली ऑख तब जब प्राची में हो गया पूर्ण सवेरा जी ॥

इधर रानी निज कक्ष में आई बैठी निज आसन पर ।
ध्यान उसे आया आई मैं नाथ वचन ठुकरा कर जी ॥

बहुत दिनों की प्यासी इन अंखियों की आश फली है ।
चिंता बदरी छटी, खिली मुरझाई हृदय कली है जी ॥
प्रिय मिलन को मन व्याकुल पर क्या कर डाला आज ।
कुशलक्षेम तक पूछी न मैंने उल्टी हुई नाराज जी ॥
मेरे लिये वन वन भटके हैं सही भूख और प्यास ।
लेकिन ढंग से बात नहीं की रुकी न उनके पास जी ॥
सोना चाहे नींद न आये रह रह उठे विचार ।
मन ही मन अधीर हुई क्यों ऐसा किया व्यवहार जी ॥
उधर भूप ने शय्या त्यागी उठकर ली अंगडाई ।
बहुत दिनों पश्चात् आज यों गहरी निद्रा आई जी ॥
जल्दी सोना जल्दी जगना स्वस्थ देह का राज ।
नियत समय पर पूरे होते सोचे दैनिक काज जी ॥
प्रकृति नियम को जो ठुकराता कष्ट अनेक उठाता ।
मर्यादा में रहने वाला सुख से समय बिताता जी ॥
खुली नींद ज्यों ही भूपति की देखा स्वर्ण प्रभात ।
प्राची में हंस रहा है सूरज सुरभित बह रही वात जी ॥
अपूर्व आनन्द आज हृदय में मन भी खिला खिला है ।
कुछ भी हो रानी की वजह से यह सौभाग्य मिला है जी ॥
मोह तन्द्रा के कारण मेरी अन्तर चेतना सोई ।
विषय वासना में फँस मैंने सुध बुध सारी खोई जी ॥
भले ही मुझको स्वर्ण पुच्छ मृग शावक भी मिल जाता ।
लेकिन आज जो पाया आनन्द कभी नहीं वह पाता जी ॥

प्रसन्न मन से हरिश्चन्द्र उठ करने बैठे जाप ।
संस्तुति में वह शक्ति छिपी है मिटे सकल संताप जी ॥

उदित भानू के होने पर क्या ठहर सके अंधकार ?
पाप नष्ट होते भक्ति से कटे कर्म की कार जी ॥

नित्य कर्म से निवृत्त हो नृप ने घडियाल बजाया ।
चौंक पड़े हैं दास दासी सब खास दास वहां आया जी ॥

क्या आज्ञा है मुझको स्वामिन् ! बोला शीष झुकाये ।
मंत्री को संदेश कहो कि वह दरबार लगाये जी ॥

जो आज्ञा कह सेवक भी तब गया मंत्री के पास ।
भूपति ने जो उसे कहा था सुना दिया सोल्लास जी ॥

आज अचानक आज्ञा ऐसी पा मंत्री हरषाया।
कहा रानी ने जो मुझको क्या उसने कर दिखलाया जी ॥

किसको क्या क्या करना सबको सचिव ने काम बताया ।
बड़ी खुशी है आज हृदय में नृप मन है पलटाया जी ॥

परम हितैषी जो थे राज्य के मुदित हुए वे मन में ।
स्वार्थ सिद्धि में लगे हुए जो आग लगी उन तन में जी ॥

कुछ स्वार्थी, कुछ परमार्थी हैं यही तो दुनिया होती ।
काक खोजता कीट पतंगे मराल चुगता मोती जी॥

कर सूचित सबको ही मंत्री भूप सन्निकट आया ।
महाराज का रूप आज तो अलग ही उसने पाया जी ॥

हाथ जोड़ कर महामंत्री ने अपना शीष झुकाया ।
सादर नृप ने मुस्का करके आसन पर बिठलाया जी ॥

बहुत देर तक गुप्त मंत्रणा मंत्री से हुई नृप की ।
किस किस के संग क्या क्या बीता बात जान ली सब की जी ॥

क्यों न मंत्री जी ! हाल प्रजा का आकर मुझे बताया ।
कैसे बताता नाथ ! आया जब सदा ही पहरा पाया जी ॥

खैर हुआ सो हो गया लेकिन आगे क्या है करना ?
प्रथम ध्येय हो अब अपना तो कष्ट प्रजा के हरना जी ॥

राजमहल से चल सीधे वे राजसभा में आये ।
बहुत दिनों पश्चात् भूप को देख सभी हरसाये जी ॥

उठकर सबने अवधपति को अपना शीष झुकाया ।
बैठ सिंहासन पर राजा ने क्रोध भाव दरसाया जी ॥

कर्मचारी जो कामचोर थे नृप ने उन्हें फटकारा ।
जरा सोचिये जनता के प्रति क्या दायित्त्व तुम्हारा जी ॥

सचिव मंत्री आदि ने इक दूजे की ओर निहारा ।
महामंत्री ने कहा भूल अब होय न स्वामी ! दुबारा जी ॥

अगर शिकायत हुई पुनः तो खैर न अपनी मानो ।
प्रजा की सेवा प्रथम धर्म है कर्त्तव्य यह पहचानो जी ॥

कहा मंत्रीगण से जनता के बीच आप खुद जायें ।
मेरे राज्य में कोई भी जन कष्ट नहीं अब पाये जी ॥

एक एक कर सब को ही नृप अपने पास बुलाये ।
दुराचार, अन्याय, अनीति भूल ठहर नहीं पाये जी ॥

अंश मात्र भी भूल करे अब सबक उन्हें सिखला दो ।
उचित दण्ड है यही कि उनको पद से तुरत हटा दो जी ॥

प्रजा के हित में राजकोप का ताला भी खुलवादो ।
अभावग्रस्त ना रहे कोई भी चाहे सो दिलवादो जी ॥

सभा विसर्जित कर राजा उस दिन तो गया भवन में ।
सोया है मखमली शय्या पर चैन नहीं है मन में जी ॥

जैसे तैसे रात तो निकली उठा शीघ्र ही भूप ।
प्रभु भजन कर प्रातः राश, ले निकला भाव अनूप जी ॥

बुला मंत्री को उनके संग नृप ग्राम नगर अब जाये ।
दुख की बातें सुन प्रजा से नृप का दिल दुख पाये जी ॥

सोचे राजा स्वार्थ साधक ही करे व्यवस्था भ्रष्ट।
उनके कारण प्यारी प्रजा यह पाती इतना कष्ट जी ॥

जनता में जब तक खुशहाली नजर न मुझको आए ।
तब तक मेरे आहत मन को चैन नहीं मिल पाए जी ॥

महामंत्री तालाब, वापिका, नहरें, कूप खुदाओ।
दे सहायता हर तरह की सबको सुखी बनाओ जी ॥

व्यापारी दशमांश से ज्यादा लाभ नहीं ले पाये ।
कृषक, श्रमिक सब ही निज श्रम का पूरा लाभ उठाये जी ॥

घर घर में हो गो का पालन करें घोषणा आज ।
जिस घर में नही दिखे आपको बंधवादे चुपचाप जी ॥

विस्मय से सब देख रहे हैं यह परिवर्तन कैसा ?
महाराज के मुख मण्डल पर तेज न देखा ऐसा जी ॥

पता चला कि महारानी ने नृप के मन को बदला ।
धन्य धन्य सब कह रहे हैं हो गया जीवन उजला जी ॥

किया प्रबन्ध भूप ने ऐसा अन्याय नहीं हो पाये ।
चोर डाकू बेईमान जनों ने बिस्तर अपने उठाये जी ॥

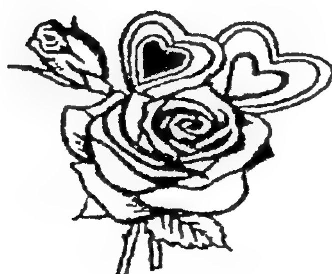
दशा अवध की सुधर गई समृद्धि चहुँदिश छाई ।
धर्म, नीति की फुलवारी को नृप ने हरि बनाई जी ॥

चहुँओर अब महाराज की यश सुरभि है फैली ।
सरस्वती अरु श्री दोनों ही करे वहाँ अठखेली जी ॥

अमन चैन है अवध राज्य में सुख निद्रा सब सोये ।
रोग, शोक, दुःख और दारिद्र्य वन में जाकर रोये जी ॥

प्रकृति भी अनुकूल हो गई शीत, ताप मेह आये ।
समय समय पर आकर सब ही सबको सुखी बनाये जी ॥

गजब सूझ यह तो रानी की अद्भुत उसका त्याग ।
शत शत बार धन्य है उसको, छोड़ा सुख का राग जी ॥





तृतीय किरण

उठता तूफान

फूल खिले जिस डाल पर, हो उसका शृंगार।
निज सौरभ दे वात को, महकाये संसार॥
सज्जन होते सुमन सम, सूख भले ही जाय।
पर अपने अस्तित्व की, परिमल वे फैलाय॥
हरिश्चन्द्र भूपति महा, अद्भुत धर्म सुवास।
उड़ पहुँची सुरलोक में, वह देवों के पास॥

पूर्ववत्

एक दिवस को देवलोक में सभा जुड़ी थी भारी।
शचिपति का सिंहासन ऊँचा शोभा अद्भुत न्यारी जी॥
अन्य अमर्त्यों के आसन की भी थी छटा निराली।
पारिजात की फैल रही थी दूर दूर तक लाली जी॥
सभा सुधर्मा का वह दृश्य, सबके नयन लुभाये।
स्वर्ण स्तंभ जो खड़े वहाँ थे आभा दिव्य फैलाये जी॥
माणिक, मोती, मरकत, मणियाँ उन स्तंभों पर चमके।
बने द्वार जो स्वच्छ स्फटिक से प्रतिपल वे भी दमके जी॥

ऊँचे आसन पर बैठे हैं शचि के संग देवेन्द्र।
देख रहे सुर सुरांगनाएं, वे सबके हैं केन्द्र जी॥

देवराज ने किया ईशारा दृश्य दिया दिखलाई।
नृत्य मुद्रा में देवों के संग सुरवनितायें आई जी॥

लगी नाचने सुरबालायें घुंघरू, छम छम बाजे।
रुनझुन रुनझुन बज रही पायल सुमन बरसते ताजे जी॥

भावों में हो विभोर गायक मधुरिम गीत सुनाये।
सत्य की महिमा सुन गीतों में आनन्द उर में छाये जी॥

तर्ज–दिल के अरमां

सत्य से महका सदा संसार है।
सत्य की महिमा तो अपरम्पार है ॥टेर॥
विश्वास जीवन में करे जो सत्य का
उनका जग में होता बेडा पार है ॥१ ॥
मुश्किलों में सत्य जो त्यागे नहीं
ऐसे नर भू के बने शृंगार हैं ॥२ ॥
सत्य का उजास मंदिम ना हुए
सत्य की होनी सदा जयकार है ॥३ ॥
जो चले हैं सत्य पर हर पल यहाँ
वन्दना उनको तो बारम्बार है ॥४ ॥

पूर्ववत्

नृत्य, गान जब पूर्ण हुआ तब देवराज यह बोले।
बड़ी शक्ति है सत्य में देवो अपना हृदय टटोले जी॥

रवि, शशि, तारों का उजास यह, सुमनों की सुवास।
जिस पर जीवन टिका हुआ है. सत्य वह है सांस जी॥

यद्यपि सत पथ भरा शूलों से विरला ही चल पाये।
लेकिन लेकर चले उमंग तो नाम अमर कर जाये जी॥

जो भी सत्य पर होता समर्पित रख मन में उल्लास।
सत्य वीर वह जग में रचता है स्वर्णिम इतिहास जी॥

एक देव तब खड़ा हो बोला स्वामी ! हमें बतायें।
कौन पुरुष महाभाग्यशाली वह सतपथ जो अपनाये जी॥

देवराज कहे पृथ्वी लोक पर भरत क्षेत्र है प्यारा।
हरिश्चन्द्र नृप अवधपुरी का सत्य का पालन हारा जी॥

दिग दिगन्त में फैली महिमा निष्ठा नहीं उन जैसी।
सत्यधर्म पर अटूट आस्था देखी कहीं न वैसी जी॥

मिश्री के कण कण में जैसे भरी हुई मिठास।
रग रग में उन हरिश्चन्द्र के सत्य करे निवास जी॥

सागर सीमा तज सकता है, मेरु भी हिल जाये।
लेकिन सत्य से हरिश्चन्द्र को डिगा न कोई पाये जी॥

वह भले ही मनुज लोक का रहने वाला प्राणी।
लेकिन हमसे बढकर उसका जीवन है कल्याणी जी॥

भूवासी के सम सोचो है कहाँ सौभाग्य हमारा।
आत्मिक वैभव के सम्मुख नित भौतिक वैभव हारा जी॥
जाने कब वह समय आयेगा मानव भव मैं पाऊँ।
करके साधना क्षपित कर्म कर अजर अमर बन जाऊँ जी॥

धन्य धन्य है धरावासी वे, धन्य है मृत्यु लोक।
मनुज लोंक में ही यह क्षमता जन्म मरण दे रोक जी॥

कहाँ हमारे में वह शक्ति, सिद्धत्व प्रगटाये।
यह अवसर तो मात्र मनुज के भव में ही मिल पाये जी।

भले ही भौतिक वैभव में हम हैं सबसे ही आगे।
लेकिन आत्म शक्ति कहाँ वैसी नरतन में जो जागे जी।

सत्यव्रती उस महाभाग को नमन मेरा शतबार।
मन, वच, तन तीनों में जिनके सत्य करे संचार जी॥

एक देव जो रखता मन में हरदम ही दुर्भाव।
औरों को नीचा दिखलाना उसका बना स्वभाव जी॥

सुन प्रशंसा औरों की वह ईर्ष्या से जल उठता।
सहन न होती श्लाघा किसी की मन ही मन में घुटता जी॥

सुरपति भय से यद्यपि वहाँ वह सका न कुछ भी बोल।
लेकिन महिमा सुन भूपति की खून उठा था खोल जी॥

अरे ! पृथ्वी के महाकीट की महक कैसे यहाँ आई।
काम करूँ ऐसा मैं जिससे चहक न दे सुनाई जी॥

ऐसा कैसा हरिश्चन्द्र वह सुरपति मन जो भाया।
अगर सत्य से डिगा नहीं दूं व्यर्थ ही देव कहाया जी॥

अधिपति यह देवों का लेकिन बुद्धि कहाँ है येनी।
हमे छोड़ जो भूवासी की करे प्रशंसा गियाँ जी॥

सिन्धु और बिन्दु में समता होती है क्या कोई ?
कहाँ देव अरु कहाँ मनुज है, बुद्धि इनकी खोई जी॥

शक्ति न मुझ में सुरपति सी जो भिड़ूं मैं इनसे जाय।
फिर भी बात असत् निकले यह करूं वही उपाय जी॥

दुर्जन को चिढ़ होती सज्जन से सुन न सके गुणगाथा।
जलभुन राख हृदय हो जाता मन उसका मुरझाता जी॥

अमरपति कर सभा विसर्जित अपने कक्ष में आये।
खड़ा खड़ा वह दुष्ट देव मन क्रोध की आग जलाये जी॥

दोहे

भले बुरे दोनों मिले, इस जगती में जीव।
धर्म भावना एक में, एक पाप की नींव॥१॥

एक खींचता टांग है, एक करे सहयोग।
एक दवा का रूप है, एक स्वयं ही रोग॥२॥

दुखियों का दुख दूर कर, सज्जन पाते चैन।
पीड़ित करने अन्य को, दुष्ट रहे बेचैन॥३॥

मिष्ट वचन कहकर सदा, सज्जन भरते घाव।
दुर्जन का तो काम है, करे नमक छिड़काव॥४॥

सुन कीर्ति गुणवानों की, दुर्जन होता राख।
सदा बुराई पर टिकी रहती उसकी आँख॥५॥

यही बात इस देव संग, जागा ईर्ष्या, द्वेष।
चला महल अपने त्वरित, ला मन में आवेश॥६॥

पूर्ववत्

दांत भींचता, पाँव पटकता अपने भवन में आया।
आग उगल रही आँखें उसकी, काँप रही थी काया जी॥

क्षुब्ध देख स्वामी को सुरियाँ, मन ही मन घबराई।
नाथ ! बात क्या आज हुई, वे बोली कर नरमाई जी॥

उपालंभ क्या दिया इन्द्र ने या किया वहाँ अपमान।
कारण क्या है स्वामी क्रोध का, हम भी तो ले जान जी॥

पता नहीं क्या तुम्हें जो मुझसे पूछ रही हो बात।
आज सभा में क्या-क्या कह गया अमरों का वह नाथ जी॥

पृथ्वीलोक के एक मनुज की महिमा उनने गाई।
देव जगत् की यह अपमिति तो किंचित् मुझे न भाई जी॥

सुर मनुज की महिमा गाए, नहीं शोभनीय बात।
भला भूपति की समता क्या कभी रंक कर पात जी।

हमसे भी क्या बढ़कर है वह हरिश्चन्द्र अवधेश।
हाड़ मांस के पुतले का जो यश गाये देवेश जी॥

सच में तो यह देव नहीं है देवराज पद लायक।
पता नहीं कैसे बन बैठा यह देवों का नायक जी॥

हरिश्चन्द्र को सत्य चलित कर धोना मुझे कलंक।
साल रहा विषधर से बढकर अपमिति का यह डंक जी॥

दुर्बुद्धि वह देव क्रोध में होकर आग बबूला।
किसके लिए बोल रहा क्या भान सभी वह भूला जी।

सच है क्रोध में ध्यान न रहता भी जाता विवेक।
अनुज इसे तो मान लीजिए काल बली का एक जी॥

क्रोध आग है बड़ी भयंकर यह सारा जग जाने।
इसके दुष्परिणामों को बस क्रोधी नहीं पहचाने जी॥

सुरांगनाएं समझ गई मन स्वामी का है मैला।
ईर्ष्यावश उस धर्म मूर्ति प्रति विष इनमें है फैला जी॥

सत्य कहा होगा सुरपति ने संशय नहीं है इसमें।
लेकिन इनको समझाने की हिम्मत इसपल किसमें जी॥

चुपचाप रही सुनती वे देवियां दिया न कुछ भी उत्तर।
मौन देख उनको बोला वह सुर उत्तेजित होकर जी॥

तुम भी उसमें सहमत लगती तभी नहीं प्रतिकार।
मेरे तो अब भी अन्तर में धधक रहे अंगार जी॥

करूँ परास्त उस पृथ्वीपति को शांति तभी मिल पाये।
सत्यधर्म से डिगे भूप तो नींद चैन की आये जी॥

साथ अगर दो तुम सब मेरा तो मैं कदम उठाऊँ।
भूवासी उस हरिश्चन्द्र का मर्दन मान कराऊँ जी।

बोली देवियाँ नाथ! कभी क्या वात आपकी टाली।
उस बगिया की दशा बुरी है रूठे जिससे माली जी।

आप तो ऐसे बोल रहे हैं हम जैसे कोई अन्य।
आज्ञा पालन में ही हम तो माने जीवन धन्य जी।

बस बस यही आश लेकर के तुम्हें बुलाया पास।
उन्हीं से आशा की जाती जो होते अपने खास जी।

देवराज ने कहा जो कुछ भी उसको मैं झुठलाऊं।
हरिश्चन्द्र को डिगा धर्म से उनको भूल बताऊं जी॥

दुष्ट हमेशा बुरी सोचता आते न अच्छे विचार।
सुन न सके वह ख्याति और की मन में जले अंगार जी॥

दुष्ट देव वह उठा वहाँ से जा बैठा एकान्त।
ईर्ष्या, क्रोध, दंभ जिसमें हो, रहे सदा वह भ्रान्त जी॥

दुर्बुद्धि वह मन ही मन में करने लगा विचार।
इष्ट सिद्धि के लिए हाथ में लूं कैसा हथियार जी॥

मन के मग पर लगा दौड़ने चिन्तन का तुरंग।
चढ़ा हुआ है मुख कमल पर खुशियों का नवरंग जी॥

सत्य के कारण हरिश्चन्द्र की यश कीर्ति चहुँ ओर।
क्यों न सत्य से पतित करूँ मैं लगा के सारा जोर जी।

कैसे काम यह होगा मेरा करने लगा वह ज्ञान।
चिंतन करते करते आया विश्वामित्र का ध्यान जी॥

विश्वामित्र जो महाक्रोधी हैं अगर हो जाये रुष्ट।
बड़ा कठिन है फिर तो उनको पुनः बनाना तुष्ट जी॥

किसी तरह वे हरिश्चन्द्र से हो जायें नाराज।
फिर तो समझो सरल हो गया मेरा चिंतित काज जी॥

अब समस्या, कैसे रुष्ट हों ? नृप से विश्वामित्र।
तरह-तरह के लगे हैं बनने भावों के नवचित्र जी।

बैठे-बैठे उसके मन में एक योजना आई।
बन सकता है इससे काम मम खुशी हृदय में आई जी॥

पुलक उठा वह इस चिंतन से अच्छा यह उपाय।
अभी अप्सराओं से मिलकर लूं में काम बनाय जी॥

दी आवाज देवियां आई आकर शीष झुकाया।
क्या आज्ञा है हमाको स्वामी? विनय भाव दरसाया जी॥

विश्वामित्र जी के आश्रम में अभी शीघ्र तुम जाओ।
क्षत विक्षत करके उसको तुम मेरा साथ निभाओ जी॥

किसी तरह का भय मत लाना कहे चाहे कुछ कोई।
विजय दूर रहती है उससे हिम्मत जिसने खोई जी॥

कुछ भी दण्ड दे ऋषि कुपित हो उससे मत घबराना ।
सजा से मुक्ति पाने हेतु भूप शरण में जाना जी ॥

कर करुणा निश्चित ही वह दुख दूर करेगा तुम्हारा।
लौट चली आना तुम तो बस कार्य बनेगा हमारा जी॥

'जो आज्ञा' कह सुर वनिताएं पृथ्वीलोक पर आई।
पीछे पीछे चला देव वह अदृश्य रूप बनाई जी॥

उद्यान महर्षि का अति सुन्दर उतरी वे वहाँ आकर।
मुदित हुई वे सभी वहाँ की छटा निराली निरख कर जी॥

अहा ! अहा !! कैसा यह अद्भुत, सुन्दर बाग मनोहर।
विविध भांति की यहाँ लतायें, झूम रहे हैं तरुवर जी॥

भव्य निराला दृश्य यहाँ का हरियाली हर ओर।
कोकिल कूक रही है डाल पर नाच रहे हैं मोर जी॥

मुग्ध होकर के उस सुषमा पर इतस्तत: वे डोले।
कुछ पहुँची तितली के पास हो हर्षित होले होले जी॥

तभी प्रकट हो करके सुर उन सब पर यों चिल्लाया।
अरे मूर्खो ? क्या करने मैंने तुम्हें यहाँ भिजवाया जी॥

करना जो था उसे भूलकर करने लगी किलोल।
बिल्कुल भी नहीं पसंद मुझको यह तुम्हारी मखौल जी॥

भीत हुई सुरबालाएं सुन स्वामी की फटकार।
करने लगी विध्वंस सजग हो आश्रम का उसवार जी॥

तड़ तड़ तड़ तड़ तोड़ डालियां लगी मसलने फूल।
कुछ मुट्ठी में भरकर के वहाँ डाले उन पर धूल जी॥

कच्चे पके तोड़ फलों को इधर उधर वे फेंके।
डर कर उड़ उड़ भागे पंछी, पीछे मुड़ नहीं देखे जी॥

विश्वामित्र तो ध्यान में रत थे पता नहीं चल पाया।
ध्वंस देखकर आश्रम का यों शिष्य वृन्द घबराया जी॥

अरे देवियो ! यह क्या कर रही पगलों जैसा काम।
नहीं सुना क्या तुमने मुनिवर विश्वामित्र का नाम जी॥

पूरा ही आश्रम तुमने तो तहस नहस कर डाला।
कौन बचाएगा आकर जब दहकेगी ऋषि ज्वाला जी॥

अगर ऋषि ने देख लिया यों निज आश्रम का नाश।
कान खोल सुन लेना मुश्किल होगा लेना सांस जी॥

हड़ हड़ हँसने लगी वे सारी ताली फिर बजाये।
विश्वामित्र से हम नहीं डरती एक ही स्वर में गाये जी॥

अधिक कहा तो लगी डांटने यहाँ से तुम भग जाओ।
अभी कचूमर निकल जायेगा अकड़ नहीं दिखलाओ जी॥

जान बचा निज शिष्य भागते आये गुरु के पास।
भय के कारण फूल रही थी उन सबकी तो सांस जी॥

हलचल मच गई उस आश्रम में लग गई दौड़ा दौड़ी।
विश्वामित्र ने हल्ला सुनकर अपनी समाधि तोड़ी जी॥

अरे सभी क्यों काँप रहे हो सांस रही क्यों फूल ?
क्यों चेहरे पर मायूसी क्यों अस्त व्यस्त दुकूल जी॥

हाथ जोड़ते हुए वे बोले सुनिए गुरुवर बात।
दिव्य नारियां आश्रम में आ मचा रही उत्पात जी॥

विध्वंस देख आश्रम का हमने रोका उनको जाकर।
लगी डांटने उल्टा हमको आंखें लाल दिखाकर जी॥

समझाया, धमकाया लेकिन नहीं मानी वे किंचित्।
बोली कौन रोकने वाले, करेंगी हम मन इच्छित जी॥

परिचय दे करके भी आपका उनको था समझाया।
लेकिन असर हुआ नहीं कुछ भी उल्टा हमें डराया जी॥

सुन बातें शिष्यों की ऋषि के नेत्र हो गये लाल।
किसकी मौत आयी यह कह कर हो गये वे विकराल जी॥

यह दुस्साहस करने वाली कौन मूर्खा वे नारी।
क्या वे पगली नहीं जानती तप की शक्ति हमारी जी॥

अतिक्रुद्ध हो विश्वामित्र वे चले वहाँ पर आये।
देख तोड़ते फल पुष्पादि जोर से वे चिल्लाये जी॥

अरी दुष्टाओ ! नहीं पता क्या यह आश्रम है किसका ?
छूटे पसीना अच्छे-अच्छे को नाम लेते ही जिसका जी॥

नारी होने के कारण ही रहम मेरा मन लाना।
और कोई होता तो उसको अपना तेज दिखाना जी॥

कुशल चाहो तो क्षमा मांग कर चली यहाँ से जाओ।
नहीं तो अपने दुष्कृत्यों का फल तुरन्त ही पाओ जी॥

हँसने लगी वे सुर सुंदरियाँ करने लगी ठिठोली।
हम पर जोर चले न तुम्हारा एक अप्सरा बोली जी॥

स्वर्गों में हम रहने वाली तुम धरती के प्राणी।
हम पर असर करे ना तुम्हारी ऋषिवर कोई वाणी जी॥

यह कह कर फिर लगी तोड़ने लता, फूल व डाली।
देख ऋषि को अधिक क्रुद्ध वे लगी बजाने ताली जी॥

हमें तोड़ना अच्छा लग रहा और भी हम तोड़ेंगी।
अधिक कहा तो एक तरु भी साबुत नहीं छोड़ेंगी जी॥

नारी समझ ही छोड़ा था पर तुम हो पूर्ण उद्दण्ड।
तो फिर तुम तैयार हो जाओ पाने को अब दण्ड जी॥

ले कमण्डल से जल ऋषि ने चहुँ ओर छिड़काया।
जो-जो अंग जहाँ जैसे थे उन्हें वहीं चिपकाया जी॥

अंग देख अपने चिपके यों सबकी सब घबराई।
लेकिन तप शक्ति के आगे कुछ भी नहीं कर पाई जी॥

चिल्लाई वे कोई दयालु आकर हमें छुड़ाये।
तप की ताकत आगे हमारा जोर नहीं चल पाये जी॥

ऋषि बोले है कौन जगत में जो तुमको छुड़वाये।
छुड़वाने से पहले वह तो पास हमारे आये जी॥

मेरी तप शक्ति ने सुर असुरों का मान गलाया।
यहाँ आने से पहले क्या देवों नहीं बताया जी॥

एक बार यदि पूछ लेती तो नहीं यहाँ तुम आती।
मुझसे टकराने की हिम्मत कभी न तुम कर पाती जी॥

अब तुम बंधी रहो ऐसे ही रोओ और चिल्लाओ।
जिस जिसको बुलवाना चाहो उन सबको बुलवाओ जी॥

इतना कहकर विश्वामित्र जी अपने स्थान पर आये।
आकर बैठे निज आसन पर फिर से ध्यान लगाये जी।

हँसते हुए शिष्य भी ऋषि के चले वहाँ से जाये।
तभी देव अपनी माया से चक्कर नया चलाये जी॥

टूटी लतिका, सुमन, डाल सब पुनः ठीक हो जाये।
पहले जैसा हुआ है आश्रम कमी नजर नहीं आये जी॥

दोहा

चिन्तन सुर करने लगा, अब क्या करूं उपाय।
इतने में वह देखता, नृपति भ्रमण को आय॥

खुशी हुई उस देव को, आते नृप को देख।
मन चाहा हो जायेगा, इसमें मीन न मेख॥

पूर्ववत्

बिना ऋतु के श्याम घटाएं नभ में उमड़ कर आई।
सुरभित शीतल, मंद पवन भी मन को रहा लुभाई जी॥

रूप बना अनुचर का वह सुर भूप सामने आया।
राजन् ! एक निवेदन मेरा कहकर शीष नमाया जी॥

राजर्षि के आश्रम से मैं अभी अभी हूँ आया।
दूर से मैंने कुछ अबला को रोते चीखते पाया जी॥

है कारण क्या? पता नहीं, पर चीख रही वे मारी।
हमें बचाओ हमें बचाओ, सब वे रही पुकारी जी॥
सोचे नृप आश्रम में ऐसा क्या हो सकता कृत्य।
फिर भी जाकर अभी देखना, घटना में क्या सत्य जी॥

दोहा

भृत्यों के संग भूपति, आया आश्रम मांय।
देख दृश्य अद्भुत वहाँ, विस्मय वह तो पाय॥

चीख रही कुछ नारियां, अनुपम दिव्य शरीर।
भूप गया उन पास में, बोला क्या है पीर ?

निकट खड़े लख भूप को बोलीं वे चिल्लाय।
महाराज करके दया, हमको दो छुड़वाय॥

पूर्ववत्

कौन आप हो कहाँ से आई, पहले बात बताओ।
अंग तुम्हारे क्यों चिपके हैं, कारण कुछ समझाओ जी॥

राजन् ! हम हैं सुरबालायें, धरा भ्रमण को आई।
सुन्दर यह आश्रम देखा तो शोभा इसकी भाई जी॥

प्रकृति छटा यह निरख निराली हम हुई भाव विभोर।
लगी नाचने गाने हम तो, जिससे हुआ कुछ शोर जी॥

पुष्प, पत्र कुछ फल भी तोड़े अच्छे लगे जो हमको।
हुई शिकायत शिष्यों द्वारा जा करके ऋषिवर को जी॥

सुनते ही वे ऋषि दौड़ते आये पास हमारे।
फल, फूलादि देख तोड़ते बरसन लगे अंगारे जी॥

खूब चिल्लाये, खूब सुनाया, खूब हुए नाराज।
रोष देखकर ऐसा हमारी बंद हुई आवाज जी॥

उन्हें अहं था अपने तप का, तेज वह दिखलाया।
खड़ी थी जैसे जिस स्थिति में हमको तो चिपकाया जी॥

सुन बोले तब हरिश्चन्द्र नृप, इसमें भूल तुम्हारी।
जान बूझ क्यों किया ऋषि को रुष्ट आपने भारी जी॥

और स्थान हैं कई क्रीड़ा के भव्य और अति सुन्दर।
नहीं डालना तुम्हें चाहिए विघ्न साधना अन्दर जी॥

मानो राजन् ! भूल हमारी लेकिन इतना क्रोध।
साधक जीवन में तो होता क्रोध बड़ा अवरोध जी॥

ऋषि-मुनि क्रोध करे तो फिर क्या गृही-संत में भेद।
नाव डूब जाती सागर में अगर हो उसमें छेद जी॥

कथन सत्य है तुम्हारा, होते संत क्षमा के धारी।
भला सभी का वे चाहते हैं चाहे हों अपकारी जी॥

पर क्यों देखो दोष अन्य का, निज पर दृष्टि डालो।
कमी दूसरों में मत खोजो अपनी कमी निकालो जी॥

जो कुछ होना हुआ हे राजन् ! विनती करो स्वीकार।
एक बार तो हमें छुड़ा दो भूलें नहीं उपकार जी॥

बोला भूप छुड़ा तो दूंगा लेकिन एक है शर्त।
बार वार जो करता भूलें पड़े कष्ट के गर्त जी॥

वचन दीजिए पहले मुझको भूल न होगी दुबारा।
तो मैं कोशिश करके तोड़ूं बंधन अभी तुम्हारा जी॥

सच कहती हैं भूल न ऐसी कभी भी होगी हमसे।
इस बार तो हमें बचा दो वादा करती तुमसे जी॥

दया आ गई हरिश्चन्द्र को सुनकर करुण पुकार।
दयवान चुप रह नहीं सकता उठता करुणा ज्वार जी॥

कष्ट करेंगे दूर दुखी का भले स्वयं दुख पाय।
तम हरने को दीपक देखो खुद को यहाँ जलाय जी॥

हरिश्चन्द्र ने हाथ लगाया ज्यों ही उन्हें छुड़ाने।
तत्क्षण हुई मुक्त देवियां लगी सभी मुस्काने जी॥

निर्निमेष वे लगी देखने नृप को अति विस्मय से।
गजब तेज है इनके सत्य का मुक्त हुई अति भय से जी॥

देव नारियाँ होकर भी हम काम न जो कर पाईं।
इस दिव्य पुरुष ने कर दिखलाया खुशी हृदय में छाई जी॥

अब तक यही समझती हम तो देवों की शक्ति महान्।
लेकिन तमस हटा यह हमारा पड़ा आज ही ध्यान जी॥

बोलीं हाथ जोड़ हे राजन् ! शत शत नमन हमारा।
लेकिन आज है हम सब मन में अतिशय तेज तुम्हारा जी॥

अगर आपकी कृपा न होती बुरा हमारा हाल।
पता न कब तक रहना पड़ता हमको यों बेहाल जी॥

सत्यव्रती ! हे परम् दयालु ! जीवन धन्य तुम्हारा।
दर्शन कर अखियां हुई पावन, आना सफल हमारा जी॥

यों गुण गा, कर प्रणाम नृप को बैठी यान में सारी।
चली स्वर्ग को, ऊपर जाकर सुमन वृष्टि की भारी जी॥

रह रह कर वह दृश्य उन्हें तो विस्मय में हैं डाले।

बड़ा गर्व था देव शक्ति पर टूटे अहं के ताले जी॥

सोच रही ऋषि शक्ति जब नृप आगे हुई बेकार।
स्वामी चलित उन्हें कर पाये दिखे नहीं आसार जी॥

चाहे जितना जोर लगा ले एक नहीं चल पाये।
श्रम, समय लगता उनके तो दोनों व्यर्थ ही जाये जी॥

देवराज भी बता चुके हैं डिगा न कोई पाये।
फिरभी स्वामी ईर्ष्या वश अशुभ चिन्तन मन लाये जी॥

समझाने पर भी नहीं समझे बड़ा हठी स्वभाव।
सज्जनता का नाम नहीं है, भरा हृदय दुर्भाव जी॥

इधर मुक्त कर वनिताओं को भूप महल में आये।
बनता देखकर काम यों अपना दुष्ट देव हरसाये जी॥

दोहा

सुनिये विश्वामित्र की, कथा ध्यान से भ्रात!
बॉध देवियों को वहॉ, मन में अति हरसात॥

कौन इन्हें छुड़वा सके, मन में बोले बोल।
बच न सके मुझ हाथ से, अगर कोई दे खोल॥

पूर्ववत्

आ बैठे ऋषि ध्यान में लेकिन, कर न सके वे ध्यान।
बार बार सुरबालाओं का दृष्य करे व्यवधान जी॥

तन बैठा मन दौड़ रहा है, उठ रहे विविध विचार।
ऋषियों से भी बढ़ होता क्या देवों का संसार जी॥

देव होने का नशा उन्हें पर हम क्या कम हैं उनसे।
अंधकार टक्कर ले सकता नहीं कदापि दिन से जी॥

तभी शोरगुल निज शिष्यों का फिर से दिया सुनाई।
स्वतः नयन खुल गये ऋषि के शिष्य दिये दिखलाई जी॥

गुरुवर जिनको बांधा आपने वे तो गई हैं छूट।
उडी गगन में सबकी सब वे बंधन गये हैं टूट जी॥

स्वतः छूट गई या आकर के किसी ने उनको छोड़ा।
कौन मृत्यु को चाहने वाला, बंधन किसने तोड़ा जी॥

बद्धांजलि हो कहा शिष्यों ने सुनिये गुरुवर बात।
पीछे आपके आये वहां पर हरिश्चन्द्र नर नाथ जी॥

उन्हें देखकर सुर बालायें चीखीं और चिल्लाईं।
पूछा नृप ने तो उन्होंने घटना सर्व सुनाई जी॥

सुन राजा ने उन्हें छुड़ाने ज्यों ही हाथ लगाया।
मुक्त हो गईं इतने में सब, दिल उनका हरषाया जी॥

नाम भूप का सुनते ही ऋषि आग बबूला हो गए।
समता, शान्ति धैर्य आदि गुण उस पल उनके सो गए जी॥

लाल हो गई आंखें उनकी धधक उठे अंगारे।
दंत, ओष्ठ को लगे काटने डरे शिष्य बेचारे जी॥

अरे दुष्ट ! मुझसे टकरा कर अच्छा नहीं किया है।
मूर्ख प्रखर ज्वाला में तूने अपना पॉव दिया है जी॥

सोया सिंह जगा विपदा को दीना तूने निमंत्रण।
मेरे कोप से कर न पायेगा तेरा कोई रक्षण जी॥

तीन लोक में मेरे जैसा है क्या कोई तपस्वी।
छक्के छूट जाते हैं नाम से मेरा क्रोध यशस्वी जी॥

मेरी उपेक्षा करके तूने सिर पत्थर से फोडा।
मौत पुकारे श्रृगाल की तो आये ग्राम वह दौड़ा जी॥

सत्य और सत्ता का उसको बड़ा अहं यह जाना।
अगर गर्व यह चूर न कर दूं व्यर्थ ऋषि कहलाना जी॥

आज तो समय बहुत हो गया कल ही सभा में जाऊं।
आज तू सो ले सुख की निद्रा कल से नींद उड़ाऊं जी॥

बड़ बड़ करते हुए ऋषि वे शय्या पर जा सोये।
सोये लेकिन नींद नयन नहीं सोचे खोये खोये जी॥

भले ही फूलों या मखमल की शय्या पर जा सोये।
दूर रहे निद्रा उनसे जो बीज असत् का बोये जी॥

उठ उठ बैठे ध्यान में लेकिन ध्यान नहीं कर पाये।
कभी अप्सरा, कभी भूप का चेहरा सामने आये जी॥

बार बार नभ को देखे वे कब सूरज यह निकले।
निगल गई क्या उसे दिशायें क्षितिज उसे कब उगले जी॥

मन निर्मल जिनका होता है चैन सदा वे पाते।
धरती बने बिछौना तो भी सुखद नींद खो जाते जी॥

पर उपकारी हरिश्चन्द्र वह निज सदन जा सोया।
नेकी कर कुए में डाली भार तनिक ना ढोया जी॥

इधर रात पूरी ही निकल गई ऋषिवर सो नहीं पाये।
सो भी कैसे सकते थे वे क्रोध था उन्हें जगाये जी॥

प्रातः होते ही चल कर वे तो अवध पुरी में आये।
देख ऋषि को क्रोध युक्त जन अमंगल मन लाये जी॥

इधर भूप भी निवृत्त होकर राजसभा में आया।
सचिव, सेवक सबको ही उनने अपना कार्य सुझाया जी॥

उसी समय आ द्वारपाल ने अपना शीष झुकाया।
विश्वामित्र ऋषि खड़े हैं बाहर, हाथ जोड़ बतलाया जी॥

बात हुई क्या ऐसी ऋषि को पड़ा जो यहाँ पर आना।
मैं सेवक तैयार सर्वदा उचित मुझे था बुलाना जी॥

अहोभाग्य वैसे तो हमारा यहाँ महर्षि आये।
स्वागत करके राजसभा में हम सब उनको लाये जी॥

उतर सिंहासन से झट राजा चले द्वार पर आये।
खड़े हो गए सभी सभासद हलचल वहाँ मच जाये जी॥

लगी द्वार पर आंखें सबकी आज ऋषि क्यों आये।
सभी जानते क्रोध ऋषि का भय मन में है छाये जी॥

दिखते ही ऋषिवर के नृपति सिर अपना झुकाये।
चरण छूने को हाथ बढ़े तो ऋषि ने पांव हटाया जी॥

रहने दे राजन् ! झूठा क्यों श्रद्धाभाव जताये।
अन्तर तेरा कुछ है और ही ऊपर और दिखावे जी॥

पहले आसन ग्रहण कीजिए फिर आरोप लगाये।
भूल हुई जो कुछ भी मुझ से, निःसंकोच बतायें जी॥

वैसे तो मैं सावधन रह अपना राज्य चलाऊं।
फिर भी हो अपराध मेरा तो दण्ड उचित मैं पाऊं जी॥

बुरे आ गये दिन तेरे नृप ! ऐसा मुझको लगता।
करके वैर कोई भी मुझसे सुख से नहीं जी सकता जी॥

कुछ भी पता नहीं हो ऐसे बन रहे तुम अनजान।
करना कुछ दिखलाना कुछ बस यह धूर्त पहचान जी॥

याद नहीं क्या कल तेने आश्रम में किया जो काम।
सुरबालाओं को क्यों छोड़ा मैंने किया था जाम जी॥

क्षमा मांग लो भूल हुई जो मैंने उन्हें समझाया।
लेकिन वे तो चूर अहं में, शिर तक नहीं झुकाया जी॥

क्षमा याचना दूर रही वे हँसी देखकर मुझको।
इसीलिए बंधन में डाला तत्क्षण मैने उनको जी॥

क्षमा मांग लेती मुझ से तो मैं ही देता छोड़।
कारण जाने बिना क्यों तूने दिया रे बंधन तोड़ जी॥

छुड़ा के मेरे अपराधी को अच्छा नहीं किया है।
ऐसा करके नृपति तूने मुझसे वैर लिया है जी॥

बहुत बड़ा अपराध तेरा यह करूं नहीं मैं माफ।
उनकी सजा तू भोगेगा सुनले राजन् ! साफ जी॥

ऋषिवर ऐसा नहीं सोचिए सत्य रहा बतलाई।
नहीं शत्रुता कुछ भी आपसे मात्र दया दिल आई जी॥

करुण क्रंदना सुनकर स्वामी चुप नहीं मैं रह पाया।
मानवता के नाते केवल निज कर्त्तव्य निभाया जी॥

अपराध नहीं यह मुझ दृष्टि से केवल करुणा भाव।
दुख से बचाना प्राणीमात्र को है मानव स्वभाव जी॥

अगर काम यह दोषपूर्ण तो अभी न्याय करवाये।
मुझे नहीं आपत्ति कोई सविनय भूप सुनाये जी॥

क्षणभर सोच में पड़ गये ऋषिवर उत्तर क्या दूं इसका।
न्याय कराये तो सारे ही पक्ष लेंगे उस नृप का जी।

दिल दिमाग का बना संतुलन ऋषि सोचे उसवार।
अगर दोषी ठहराऊं इसे नहीं यह तो मेरी हार जी॥

ऋषि होकर भी गृहस्थ से यदि परास्त मैं हो जाऊं।
तो सचमुच अपने तप बल को मैं तो यहाँ लजाऊं जी॥

ऐसे तो यह मानेगा नहीं, इस पर क्रोध दिखाऊं।
धमका डराके मैं नृपति से भूल स्वीकार कराऊं जी॥

अतः क्रोध दिखलाकर नृप पर विश्वामित्र जी बोले।
अरे घमण्डी ! पाखण्डी ! क्यों नहीं हृदय टटोले जी॥

दण्डित किया था मैंने जिनको दोप पूर्णिता जान।
विन पूछे छुड़वाना क्या नहीं है मेरा अपमान जी॥

मतलब क्या था इससे तुझको अरे मूर्ख अज्ञानी।
हम ऋषियों के निर्णय में है हस्तक्षेप नादानी जी॥

हरिश्चन्द्र तब बड़े विनय से बोले जोड़कर हाथ।
परम विज्ञ, महाज्ञानी, तपस्वी आप तो हो ऋषिनाथ जी॥

करना दूर दुख दुखी प्राणी का हर मानव का धर्म।
आप स्वयं ही बतलायें क्या है यह अनुचित कर्म जी॥

धर्म विरुद्ध काम यदि होता कैसे वे खुल पाती।
छूने मात्र से ही क्या उनको मुक्ति यों मिल जाती जी॥

फिर भी भूल आप यदि मानो दण्ड कोई भी दे दो।
दास आपका खड़ा सामने चाहे जो वह कह दो जी॥

क्या इतनी हिम्मत जो मेरा दण्ड लेगा तू झेल।
अधिक अकड़ मत दिखला राजन्! निकल जायेगा तेल जी॥

अकड़ नहीं सच कहता हूँ बात कदापि न टालूं।
अगर हुक्म हो शीष काटकर श्री चरणों में डालूं जी॥

शीष तो मुझको नहीं चाहिए देना ही यदि चाहो।
तो फिर मार्ग दान का उत्तम इसको ही अपनाओ जी॥

गर्व तुझे है बहुत स्वयं पर तो फिर कर संकल्प।
राज मुकुट दे करके मुझको सेवा करले अल्प जी॥

यह सुनते ही हरिश्चन्द्र ने मुकुट दिया उतार।
यह तो बड़ी कृपा की मुनिवर उतरा मेरा भार जी॥

तत्पर देख राज्य देने को ऋषि विस्मय मन लाये।
मैं तो सोच रहा था राज्य भी भला कोई दे पाये जी॥

बस इतने में बन जायेगा मेरा अपना काम।
लेकिन यहाँ तो देख रहा हूँ उल्टा ही परिणाम जी॥

कितना अहं इसे अपने पर करे न भूल स्वीकार।
मैं भी मनवा नहीं दूं तो ऋषिपन को धिक्कार जी॥

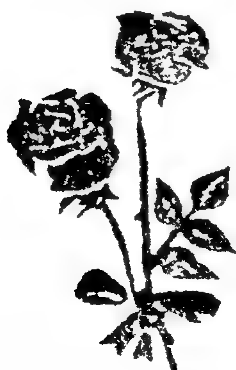
यही सोच मुनि बोले राजन् ! झूठा न अहं जताओ।
भला इसी में भूल मान लो बात न आगे बढ़ाओ जी॥
राज्यदान कोई खेल नहीं है अपना मुकुट उठाओ॥

कहीं ऐसा न हो कि तुम फिर मन ही मन पछताओ जी॥

राज्यदान पश्चात् दशा क्या होगी करो विचार।
बिना विचारे बोल देने में किंचित् भी नहीं सार जी॥

सोच समझ ही बोल रहा हूँ क्या करना विचार।
राज्य दान कोई गलत काम नहीं जाने सब संसार जी॥

अच्छा तो तू मान रहा है अपने आपको दानी।
तो फिर ले संकल्प मूर्ख ! कर में लेकर पानी जी॥





चतुर्थ किरण

राज्य दान

होते हैं संसार में, कई तरह के वीर।
दान, धर्म, तप, कर्म से हरते सबकी पीर॥

कायर से बनता नहीं, इस जग का इतिहास।
वीरों से ही फैलता, अवनी पर उल्लास॥

मन में जो भी सोचते, कर दिखलाते काम।
वीरों के ही अमर हैं, इस अवनी पर नाम॥

कंकर मिलते सब जगह, रत्न मिले कुछ ठौर।
कौवे तो हर ग्राम में, कम दिखते हैं मोर।

हरिश्चन्द्र सी है कहाँ, सत्य वादिता और।
सत्यवीर बन दान दे, बने जगत शिर मौर॥

आर्य खण्ड में आज भी, गूंज रहा वह नाम।
महिमा उनकी गा रहे, नगर, गली, घर, ग्राम

पूर्ववत्

संकल्प हेतु जल लेने ज्यों ही बढ़े भूप के हाथ।
रुकिये राजन् ! बोला मंत्री, सुनिये मेरी बात जी॥

राज्य कार्य तो राजा करते ऋषि दुनिया है न्यारी।
जप, तप, ध्यान, साधना ही तो होती उनको प्यारी जी॥

सत्ता सुख में पड़े ऋषि तो बिगड़े काम तमाम।
दूर दृष्टि से सोचो राजन् ! क्या होगा परिणाम जी॥

राज सिंहासन तो होता है, सदा शूलों का ताज।
बात बात में राजर्षि तो होंगे फिर नाराज जी॥

वैसे भी नमनीय, पूजनीय होते ऋषि, मुनि, ध्यानी।
क्षमा मांगने में क्या जाता व्यर्थ आपने ठानी जी॥

बिन अपराध क्षमा यदि मांगो तो भी घटे न मान।
क्षमा मांगने वाला होता जग में सदा महान् जी॥

राज्य दान कर दोगे मानूं बात बात में आप।
लेकिन यात्रा पर जाने से पूर्व लक्ष्य ले नाप जी॥

कहीं ऐसा न हो कि जनता अकारण दुख पाये।
राज्य दान से पहले राजन् ! इस पर ध्यान दिराये जी॥

अहो मंत्रीवर ! क्या मैं सोचूं यह तो उत्तम काम।
अनुचित होता अगर कदम यह मैं नहीं लेता नाम जी॥

नश्वर है यह राज्य संपदा फिर क्यों इस पर ममता।
समरस बनकर रहना ही जीवन की सच्ची सफलता जी॥

कुछ न भरोसा इस लक्ष्मी का यह तो चंचल नारी।
बनता कभी रंक राजा तो कभी भूप भिखारी जी॥

आप दृष्टि में राज्य प्राप्ति है बहुत बड़ी उपलब्धि।
लेकिन नीर पवन को दे क्या दुखी होता है अब्धि जी॥

धर्म से बढ़कर नहीं जगत में सुखद संपदा कोई।
बाह्य वैभव में सुख वह माने चेतना जिसकी सोई जी॥

धर्म रक्षा हो राज्य देने से मुझको हर्ष अपार।
दान पंथ मुक्ति का जग में, नहीं यह व्यापार जी॥

जो कुछ मुख से कह दिया अब उसको ही सच जानो।
विश्वामित्र जी राजा आज से आगे बात न तानो जी॥

प्रजा दुखी क्यों होगी इनसे बहुत बड़े ये ज्ञानी।
राजा भी रहकर आये हैं, फिर क्यों है हैरानी जी॥

रही बात अब क्षमा याचना की वह भी सुन लेना।
ऋषि समक्ष नही बाधा नमन में ध्यान परन्तु देना जी॥

दुख से बचाना अपराध नहीं फिर कैसे करूं स्वीकार।
सिर चाहे कट जाये लेकिन झूंठ न करूं उच्चार जी॥

बैठ गया मन मार के मंत्री कर भी क्या सकता था।
चुप रहने के सिवा और क्या चारा हो सकता था जी॥

सुन नृप बातें मन ही मन ऋषि अपने आग लगाये।
जिसे जलाने मैं आया था वह तो मुझे जलाये जी॥

कुछ भी हो पर इस भूपति को अपमानित है करना।
हानि लाभ होते ही रहते इनसे तो क्या डरना जी॥

तप, जप, साधना चली जाये पर बात न जाने दूंगा।
क्षमा मांगता नजर आये यह ऐसा काम करूंगा जी॥

सत्यव्रती, धर्मी होने का इसको है अभिमान।
लेकिन मुझसे पड़ा है पाला निश्चित गलेगा मान जी॥

मानव क्या दानव, देवों का मैंने मान गलाया।
देवराज भी मेरे तप को देख कभी घबराया जी॥

अगर इसे मैं नहीं झुका दूं ऋषि होकर क्या कीना ?
मुश्किल कर दूंगा इसका अब इस धरनी पर जीना जी॥

टूट जायेगा कांटा लेकिन चुभ कर देगा पीड़ा।
हरिश्चन्द्र को झुकाके रहना उठा लिया है बीड़ा जी॥

निज हानि सहकर भी दुर्मति अन्य का धर्म बिगाड़े।
गिर ओले खुद भले गलेंगे खेत जरूर उजाड़े जी॥

घट फूटे चाहे अपना पर अन्य का शकुन मिटाये।
दुख उपजा औरों का वह तो मन में खुशी मनाये जी॥

काम बड़ा ही टेढ़ा है जब ईर्ष्या से मन जलता।
भाव द्वेष का पल पल उसके अन्तर में है पलता जी॥

अपमानित नृप को करने की ऋषि ने अब तो ठानी।
त्याग, तपस्या के ऊपर फिर जाये चाहे पानी जी॥

कहा ऋषि ने और सोचले अभी समय ओ दानी।
मेरे से टकराने वाला नहीं मांगता पानी जी॥

मानव क्या सुर, दानव भी मुझसे जाने हैं कांप।
निज करणी पर करे बेचारे रो रो पश्चाताप जी॥

नृप बोला वह पछताता जो करता है दुष्कर्म।
मैं क्यों पश्चाताप करूंगा किया नहीं अप्कर्म जी॥

हिंसा, झूठ, फरेबी, चोरी करे जो नर पछताये।
मैंने क्या कुछ किया है ऐसा, आप ही सोच बतायें जी॥

कष्ट उठाकर भी औरों को साता यदि दे पाऊं।
सार्थक जीवन अपना मानूं अश्रु पौंछ यदि पाऊं जी॥

मुझे दुःख नहीं किंचित् भी है करते राज्य का दान।
खुशी खुशी मैं सौंप रहा हूँ, भेंट मेरी लो मान जी॥

काम न बनता देख यों अपना ऋषि मन में झल्लाये।
इसे झुकाना चाहूं लेकिन झुकता नहीं झुकाये जी॥

गृहस्थ होकर भी जब अपनी छोड़े नहीं यह टेक।
मैं क्यों छोड़ूं बड़ा होने का लिखा मैं लाया लेख जी॥

यही सोच ऋषि बोले रे नासमझ ! घमण्डी सुनले।
पुण्य समाप्त जानकर अपने उल्टी गिनती गिन ले जी॥

अरे हठी ! तू छोड़ दुराग्रह कर पहले विचार।
राज्य दान पश्चात् जीयेगा ले किसका आधार जी॥

सविनय भूपति कहे मुनिवर ! चिंता करो न आप।
आप कृपा से सब शुभ होगा लाये न मन संताप जी॥

अच्छा तो फिर देर करो मत ले लो कर में नीर।
राज्य प्राप्ति हित मन मेरा भी हो रहा अब अधीर जी॥

ज्यों ही जल लेने को राजा अपना हाथ बढ़ाये।
निज नयनों पर विश्वामित्र विश्वास नहीं कर पाये जी॥

आतुर यह तो राज्य देने को ऋषि विस्मय मन लाये।
एक इंच धरती के खातिर शोणित लोग बहाये जी॥

प्राप्त पूर्वजों से जो धरोहर कौन भला दे पाये।
राज्य प्राप्ति के लालच में तो असि को लोग उठाये जी॥

अपमानित करने आया पर काम नहीं बन पाया।
शीष झुका कर के भी यह तो स्वाभिमानी कहाया जी॥

नाको चने चबा नहीं दूं तो विश्वामित्र नहीं नाम।
करूं उपाय ऐसा जो इसका जीना होय हराम जी॥

आज राज्य ले ही लूंगा फिर कुछ न बचे इस पास।
खान पान तक के भी लाले दूर रहा आवास जी॥

फिर मैं इस महादानी आगे रखूंगा ऐसी मांग।
नजर आयेगा हाथ जोड़ता नमा यह उत्तमांग जी॥
'शुभमस्तु स्वस्ति भव राजन्'! बोले विश्वामित्र।
अनुपम दान तेरा स्वीकारा मिले कीर्ति सर्वत्र जी॥

सत्य कहूँ हे राजन् ! तेरे सदृश नहीं कोई दानी।
बिना दक्षिणा दान अधूरा यह भी लो तुम जानी जी॥

लो यह भी हाजिर है ऋषिवर बात यह मैं जानू।
मिले दक्षिणा दान बाद ही बात आपकी मानूं जी॥

सुनो मंत्रीवर ! खोल खजाना कहूं सो ला दो मुझको।
एक सहस मुद्राएं स्वर्ण की भेंट करो ला ऋषि को जी॥

मौका देख अच्छा ऋषि बोले आँख दिखाकर लाल।
दिया दान या मखौल की है सोच अरे भूपाल जी॥

सम्पूर्ण राज्य कर चुका दान फिर अब क्या है अधिकार।
आज्ञा देने से पहले कुछ राजन् ! करो विचार जी॥

पुत्र, पत्नि अतिरिक्त नहीं अब कुछ भी है यहाँ तेरा।
हाथी, घोड़े, नोकर, चाकर राजकोष सब मेरा जी॥

मुझको तुम अज्ञानी लगते दिल है भले उदार।
दत्त वस्तु पर कभी किसी का होता क्या अधिकार जी ?

राजा हो पर प्रज्ञा न वैसी प्रकट हो रहा साफ।
अब भी समय अपराध मानलो कर दूंगा मैं माफ जी॥

एक बार फिर कहता हूँ मैं बात मेरी तुम मानो।
मानोगे सुख पाओ वरना दुखद जिंदगी जानो जी॥

सोचे राजा सत्य कथन है कहाँ राज्य अब मेरा।
देकर भी अधिकार मान रहा कैसा घोर अंधेरा जी॥
कान पकड़ अपने नृप बोला ऋषिवर यह तो भूल।
ध्यान रहा नहीं मुझको इसका यह मैं करूं कबूल जी॥

माफी चाहता इसके लिए मैं क्षमा करो मुनिराज।
आप ज्ञानियों के अनुभव पर है दुनिया को नाज जी॥

राशि दक्षिणा को पाने हित श्रम कुछ करना होगा।
समय चाहिए इस हेतु ऋषि देना आपको होगा जी॥

मुनि बोले-कहाँ से लाओगे आखिर मुद्रा हजार।
भिक्षा तो तुम मांग न सकते जाके गली बाजार जी॥

बन तुम्हारा कहता हूँ मैं हठ में नहीं है सार।
पत्थर फैंक सिर करे सामने मूर्खो का सरदार जी॥

सोच रहे ऋषि शायद अब तो बात जायेगा मान।
इतनी मुद्रा जुटा न पाये गल जायेगा मान जी॥
अगर समझ जाये यह तो बस सोने में सुगंध।
मेरी साधना में बाधा की नहीं रहे दुर्गन्ध जी॥
ऋषि बोले लो मैं देता हूँ एक माह की छूट।
लेकिन अवध छोड़ना होगा इसमें नहीं है झूठ जी॥
मेरे राज्य में रहने का अब नहीं तुम्हें अधिकार।
श्रम हेतु भी कार्य मिले नहीं करलो हृदय विचार जी॥
नृप बोला-आदेश यही तो अवध छोड़ मैं जाऊं।
धर्म धरा काशी में जाकर अपना काम बनाऊँ जी॥
वहाँ पर भी कुछ कर न सकोगे बात यह मैं जानूं।
कैसी बुद्धि है तेरे में वह भी मैं पहचानूं जी॥
एक माह में इतनी राशि अर्जित तुम कर पाओ।
मुझे तो संभव नहीं लगता है व्यर्थ ही आश लगाओ जी॥
कुछ भी नहीं बिगड़ा अधुनापि मान लो अपनी भूल।
कर देगा बर्बाद जिन्दगी यह अहं का शूल जी॥
हरिश्चन्द्र दृढता से बोले कभी न होगा ऐसा।
झूठ न बोलूं लालच में पड़ साथ चले क्या पैसा जी॥
विना संपदा कष्ट उठाऊं यह भी भय नहीं मुझको।
सर में लगाने वाला डुबकी पहले देखना भुजको जी॥
सत्य धर्म को दे के तिलांजलि साधू अपना स्वार्थ।
साध्य छोड़ साधना साधन लगता नहीं यथार्थ जी॥

आगे पीछे कभी तो ऋषिवर छूटेगा यह राज।
तो फिर खुशी खुशी ही छोड़ूं मैं खुद इसको आज जी॥

सोच रहे ऋषि अब तक मेरी रही व्यर्थ सब चाल।
यह न फँसा मैं खुद ही उलझा फैंके जो जो जाल जी।

संत जीवन में राजकार्य तो बहुत बड़ी है समस्या।
इससे तो होगी अनचाहे मेरी भंग तपस्या जी॥

लेकिन अब क्या हो सकता है बात बढ़ी वह आगे।
बिना सिकन के यह तो देखो वैभव अपना त्यागे जी॥

क्या ही अच्छा होता मैं नहीं राजसभा में आता।
आश्रम में ही तप बल से मैं नृप को दण्ड दिलाता जी॥

यहाँ आने की सचमुच मैंने बहुत बड़ी की भूल।
छोटी बात को तूल दे इसने हिला दी मेरी चूल जी॥

मैंने तो सोचा था कि दिखला कर आँखें लाल।
भूपति को भयभीत करूंगा रख कर नये सवाल जी॥

लेकिन इसे तो भय नहीं मुझसे छोड़े न अपनी जिद्द।
मैं भी कम नहीं, करके रहूंगा इसको दोषी सिद्ध जी॥

जब यह अड़ा हुआ है हठ पर मैं क्यों छोड़ूं बात।
जब तक भूल मान नहीं ले निज छोड़ूं न इसका साथ जी॥

यही सोच, भर क्रोध में बोले लगता दुर्दिन आये।
देखूं मुझसे टकरा सुख से कैसे तू जी पाये जी॥

कहा तुम्हारे हित के हित फिर भी रहा न मान।
तो फिर नगर छोड़ दे अब ही अवधपति फरमान जी॥

कान खोल सुन लेना राजन् ! बता रहा जो बात।
स्त्री, सुत सिवा एक पैसा भी रहे न अपने साथ जी॥

एक माह में इष्ट दक्षिणा लेकर शीघ्र ही आना।
अगर न आए करूं भस्म तोहे भूल नहीं यह जाना जी॥

अधिक एक दिन भी निकला तो सुन लेना तू साफ।
अनुनय, विनय, सिफारिश से भी नहीं करूंगा माफ जी॥

सोच रहे ऋषि शायद ऐसा कहने से डर जाये।
भय से ही यदि भूल मान ले काम मेरा बन जाये जी॥

पर दृढ धर्मी को कैसा भय, भय भी उनसे डरता।
यश, वैभव तो पीछे-पीछे बन के दास है फिरता जी॥

विश्वामित्र की सुन यह धमकी हरिश्चन्द्र मुसकाये।
स्वीकृत है आदेश आपका त्याग अवध हम जाये जी॥

राज्य छोड़ सकता हूँ लेकिन सत्य कदापि न छोड़ूं।
प्राण चले जाये नहीं चिंता, धर्म से मुँह नहीं मोड़ूं जी॥

जाने को तैयार अभी मैं आज्ञा आपकी मान।
लेकिन मेरी एक बात पर देना ऋषिवर ध्यान जी॥

अवध राज्य की प्रजा को मैंने सदा पुत्र सम पाला।
सुख दुख में हरदम ही स्वामी किया मैंने संभाला जी॥

न्याय, नीति अरु धर्म का मैंने उनको पाठ पढ़ाया।
यदा कदा यदि भूल हुई तो स्नेह सहित समझाया जी॥

अच्छा इतना समझदार तू देना मुझको ज्ञान।
किसके आगे बोल रहा हूँ क्या यह भी है भान जी॥

हम जैसों के द्वारा ही तो निर्मित हुए विधान।
और हमें ही सिखा रहा है बन करके मतिमान जी॥

अब तक तुमने राज्य किया है ले जिनका आधार।
वे सब नियम बनाये हमने हम ही करें सुधार जी॥

क्या क्या करना प्रजा के हित में वे सब ही मैं जानूं।
तुम प्रस्थान करो यहाँ से तो कार्य मेरा पहचानूं जी॥

अवध छोड़ने की आज्ञा सुन सारे जन घबराये।
बोले सभासद आप बिना नहीं हम तो यहाँ रह पाये जी॥

जहाँ भी आप जायेंगे स्वामी आयेंगे हम साथ।
हमें रोकना अवधपुरी में नहीं ऋषि के हाथ जी।

यह सुन उछल पड़े, ऋषि बोले, मुझे नहीं परवाह।
जाना चाहे चला जाये वो नहीं रोकता राह जी॥

सभी सभासद् पहले ही थे राजर्षि पर क्रुद्ध।
यह सुनकर तो आग लगी है मानो छिड़ेगा युद्ध जी॥

मन ही मन वे लगे कोसने ऋषि का भले ही वेश।
लेकिन इनमें मानवता का दिखे नहीं लवलेश जी॥

संत, ऋषि, मुनि तो होते हैं जग में, समरस शिष्ट।
संयत, संस्तुत, सरल, सहिष्णु, विमल, वितृष्णा, विशिष्ट जी॥

क्रोध, वैर, ईर्ष्यादि का क्या मुनि जीवन में काम।
शांत, दांत, अभ्रांत, कान्त वे होते सद्गुण धाम जी॥

तापस तपस्वी, संत-संन्यासी, ऋषि-मुनि, देखे अनेक।
पर इन जैसे ये ही हैं, नहीं किंचित् भी विवेक जी॥

इतने बड़े दानी के संग भी जब ऐसा व्यवहार।
क्या आशा पायेगी जनता इनसे न्याय दुलार जी॥

हाव भाव लख प्रजा के राजा बोला बरसा प्यार।
तुम्हें कहीं नहीं जाना बंधु, तज अपना घरबार जी॥

विश्वास मुझे पूरा है ऋषि पर करें प्रजा हित काम।
राजा और संत हों वे तो सबको मिले आराम जी॥

सबसे मेरा एक निवेदन निज निज धर्म निभायें।
राजर्षि के सब कार्यों में अपना हाथ बटायें जी॥

नृप की सुन यह बात सभी वे हुए सभासद शान्त।
मुख से बोल रहे कुछ भी नहीं लेकिन मन अशान्त जी॥

नृप बोला-स्वामी आज्ञा दो विदा आपसे पाऊं।
रानी और रोहित से मिलने अब महल में जाऊं जी॥

यह कह करके महीपाल ने अपना शीष झुकाया।
हाथ जोड़ते हुए सभी को पीछे पाँव हटाया जी॥

हरिश्चन्द्र के जाते सभासद निकले वहाँ से सारे।
विश्वामित्र के विस्फारित[1] चक्षु खाली सभा निहारे जी॥

अरे अरे क्या हुआ मेरे संग उलट गई सब चाल।
उर्णनाभ[2] [redacted] सी दशा हुई मम फंसा स्वयं के जाल जी॥

राजमुकुट देकर उसने तो निज को बड़ा बनाया।
पर मैं भी नहीं झुकने वाला कहकर होठ चबाया जी॥

हुआ आज अपमान मेरा तो बदला इसका लूंगा।
मुझ से टकराने का फल भी उसको चखा मैं दूंगा जी॥

१ - फटी हुई, खुली हुई   २ - मकड़ा

भूल न अपनी मान के इसने मुझे तमाचा मारा।
देखूं कैसे सुख से रहे वह फिरेगा मारा मारा जी॥

तप व सत्य के मध्य अद्य जो छिडा यह संघर्ष।
मैं न पराजय मानूं कदापि लगे चाहे कई वर्ष जी॥

इधर भूप भी निकल सभा से करता चले विचार।
कैसे बात करूं तारा से क्या वह करे स्वीकार जी॥

बहुत दिनों से सुध वुध भी तो ली ना मैंने जाकर।
क्या व्यवहार करेगी रानी मुझे महल मे पाकर जी॥

स्वर्ण पुच्छ का मृग लेकर ही आऊंगा तुम पास।
कह निकला था मैं रानी को दिला पूर्ण विश्वास जी॥

वैसा शिशु तो अब तक भी मैं कहीं से ला नहीं पाया।
ला भी कैसे सकता था मैं वुद्धि का भरमाया जी॥

इस दृष्टि से उचित न जाना पर मेरी मजबूरी।
जो कुछ घटित हुआ संग मेरे बतलाना भी जरूरी जी॥

उर में जो चिंता उमड़ी वह चेहरे पर अब झलके।
जाने क्या सोचेगी रानी आज महल में मिलके जी॥

मैं भी कितना निष्ठुर था जो जाकर भी न संभाला।
आज ऋषि ने धर्म संकट में मुझे फंसा है डाला जी॥

पुरुष होने के अहं ने मुझको आज तलक है रोका।
लेकिन इस मजबूरी ने फिर दिया मुझे यह मौका जी॥

मैला मन रानी का होता कभी सामने आती।
बना बहाना कोई मुझसे आकर वह भिड़ जाती जी॥

मुझे तो लगता मोह तमस को दूर हटाने हेतु।
स्वर्ण पुच्छ का लगा दिया है उसने मेरे केतु जी॥

आज भाग्य में स्वर्णिम अवसर जो मेरे यह आया।
वह भी कृपा रानी की मानूं दिव्य दान मन भाया जी॥

अब तक तो सब ठीक हुआ पर अगली बात पर आऊं।
राज्यदान की बात उसे मैं किस मुख से बतलाऊं जी॥

बिना बात कानों में डाले कदम जो मैंने उठाया।
क्या होगा सुनकर रानी ने अगर विरोध जताया जी॥

प्रजा तो वैसे भी नाखुश है निर्णय लिया जो मैंने।
अगर रानी उनको उकसादे पडे लेने के देने जी॥

यही सोचता हुआ भूपति निज महल में आये।
कहाँ है रानी चारों ओर वह अपनी दृष्टि दौडाये जी॥

देख भूप को दास दासी सब दौड़ पास है आये।
बहुत दिनों के बाद स्वामी के दर्शन हमने पाये जी॥

पूछा नृप ने रोहित कहाँ पर, वे बोले एक साथ।
रानी सा उपवन में बैठी रोहित के संग नाथ जी॥

उतर महल से सीधा ही नृप बगिया में है आया।
तरुवर छाया में सुत के संग रानी को है पाया जी॥

प्रश्न करे रोहित तारा से उत्तर वह बतलाये।
मोद में रोहित सुत को महारानी बार बार सहलाये जी॥

माँ बेटे में कैसी चर्चा जरा यह मैं जानूं।
पुत्र मेरा यह किसे गया है यानें मन पहचानें जी॥

यही सोच तरु के पीछे जा खड़ा हो गया भूप।
बहुत दिनों पश्चात् देखा है माँ बेटे का रूप जी॥

दोहा

सघन वृक्ष की ओट में, सुनता है नृप बात।
हमसे मिलने क्यों नहीं, आते हे माँ ! तात॥१॥
राज्य भार उन पर पड़ा, रहते दिनभर काम।
जनता की सेवा करें, कहाँ इन्हें आराम॥२॥
पद पाकर के ना करे, तदनुरूप जो काम।
इस वसुधा पर व्यक्ति वह, होता है बदनाम॥३॥
बेटे ! तेरे तात तो, रहते है बेचैन।
दुखी रहे कोई नहीं, यही खोजते नैन॥४॥
सबकी सुध वे ले रहे, हम पर क्यों नहिं ध्यान।
बात न मेरे माँ ! जंचे, कैसे लूं यह मान॥५॥
महलों में हम रह रहे, हमें न कोई कष्ट।
फिर क्यों बेटे ! आ यहाँ, समय करे वे नष्ट॥६॥
अच्छा माँ ! अब समझ में, आई मेरे बात।
प्रजा के हित में लीन है, हरदम मेरे तात॥७॥

तर्ज—नखरालो

सुन रोहित मेरे लाल ! तुझे भी यही कहना।
मानव तन पा अनमोल, धर्म पर दृढ़ रहना।।टेर॥
बड़े भाग्य से जीवात्मा यह मानव का भव पाये।
धन्य वह सत्कर्मो में लग जीवन सफल बनायें।
औरों के हित में लाल ! कष्ट तू नित सहना॥१॥

जितना सुख बांटोगे बेटे ! उतना ही पाओगे।
साता देकर साता पाये, इसे न विसराओगे।
सत्य धर्म का, मेरे लाल ! पहनना तू गहना ॥२॥

साहस और बुद्धि के बल पर जीवन को है जीना।
समय आने पर नीलकंठ बन जगती का विष पीना।
छू धर्म शिखर को लाल ! वहाँ से मत ढहना ॥३॥

देश, धर्म, जाति हित चाहे पड़े होना कुर्बान।
लेकिन पीछे पैर हटे नहीं, रखना इसका ध्यान।
मंजिल से पहले लाल ! कभी मत तू रुकना ॥४॥

धर्म परायण तात तेरे हैं, सत्य न्याय पर चलते।
सौरभ वाले सुमन सदा ही शूलों पर हैं खिलते।
स्वारथ सरिता में लाल ! कभी मत तू बहना ॥५॥

अंधों की आँखें बन करके उनको मार्ग दिखाना।
"कमल प्रभा" दुखियों के हित में जीवन सदा लगाना।
तेरा जीवन बने महान्, कषायों में मत दहना ॥६॥

पूर्ववत्

कर श्रवण बातें दोनों की चमक उठा नृप नूर।
पूर्ण रूप से अब तो मन का संशय हो गया दूर जी॥

इतनी इसकी ऊंची भावना, व्यर्थ ही मैं घबराया।
रानी स्वागत करेगी निश्चित पथ जो यह अपनाया जी॥

तारा सचमुच तारा ही है रोहित कुल उजियारा।
तारा के सम सुत भी मेरा नयनों का सितारा जी॥

बस फिर क्या था निकल ओट से भूप सामने आया।
अकस्मात् देख प्रियतम को तारा मन भय छाया जी॥

क्या कारण जो आज अचानक आये स्वामी पास।
कहीं पुनः इनको न फंसादे मेरे मोह का पाश जी॥

उठ पहले पति पाद-पद्मों को छूआ ससम्मान।
आँख उठा फिर देखा पाया चेहरा उनका म्लान जी॥

मन अकुलाया आज स्वामी क्यों लग रहे ऐसे उदास।
आशंका से मानो रुक गई पलभर उसकी सांस जी॥

स्वामी ! क्यों बेचैनी वदन पर लगते क्यों घबराये ?
राजमुकुट भी नहीं शीष पर कारण क्या बतलाये जी॥

यों ही आ गया प्रिये ! मिलन हित, अंतिम शायद मिलना।
प्यारे इस मेरे रोहित का ध्यान पूर्ण तुम रखना जी॥

सहम उठी सुन महारानी यह बोल रहे क्या नाथ।
स्पंदित, रोमांचित, कंपित हृद, तन, मन, घूमे माथ जी॥

ऐसा क्यों कहते हो स्वामी, अंतिम मिलना आज।
अपराध हुआ क्या मुझसे कोई बतालाये सिरताज जी॥

सोचा नृप ने अभी तो मैंने कुछ भी नहीं कहा है।
फिर भी देखो व्याकुल हो यह पा रही कष्ट महा है जी॥

ध्वस्त हो गया पूरी तरह ही भ्रम का खण्डहर मेरा।
व्यर्थ भ्रांति ने मुझ मानस पर डाल रखा था डेरा जी॥

मौन देखकर प्रियतम को वह और अधिक घबराई।
कर कमलों को थाम के बोली क्या चिंता चित्त छाई जी॥

साहस ही नहीं होता रानी ! कैसे सुनाऊं बात।
दिल दुख पायेगा सुन तेरा अतः कहा नहीं जात जी॥

यह तो चेहरा बता रहा है कष्ट भरी कोई बात।
अव्यक्त भाव तो देख वदन ही हो जाते है ज्ञात जी॥

बना प्रसंग क्या सुनूं तो स्वामी ! धडक रहा दिल मेरा।
अवधपुरी पर अरिदल ने क्या डाल दिया है डेरा जी॥

मैंने मित्र बनाये रानी शत्रु नहीं बनाये।
किसका साहस अवधपुरी पर अपनी आँख उठाये जी॥

कहते बनता नहीं है मुझसे अटके जिह्वा मेरी।
अकस्मात् आ पडी आपदा कोमल काया तेरी जी॥

क्या कहना चाहो हे स्वामी ! सीधी बात बताओ।
शब्द जाल में नाथ ! मुझे यों आप नहीं उलझाओ जी॥

चरण चंचरिका मैं आपकी मुझसे कुछ न छिपाओ।
जो भी बात बनी हो स्वामिन् ! साफ साफ बतलाओ जी॥

सुख दुःख में मैं सदा साथ हूँ मन में कुछ नहीं लावें।
जो भी कोई कष्ट, विपद हो निर्भय मुझे सुनावें जी॥

रोने, सोचने से तो स्वामी दूर नहीं दुख होता
आर्तध्यान से ओज, तेज भी अपना नर है खोता जी॥

अतः कहो, मत सोचो किंचित् मैं सेवा में तत्पर।
नहीं छिपाओ कुछ भी मुझसे बात बताओ सत्वर जी॥

सन्नारी नहीं कभी पति को दुखी देखना चाहे।
पलक पांवडे बिछाये हरपल देखे प्रिय की राहें जी॥

सच्चा देख प्रेम प्रिया का नृप मन हुआ विश्वास।
खोला मुँह अब महीपाल ने लेकर लम्बी सांस जी॥

ऋषि आश्रम का दृश्य देखकर हृदय मेरा भर आया।
सुन पुकार सुरबालाओं की मैंने उन्हें छुडाया जी॥

इसी बात पर विश्वामित्र जी हुए मुझसे नाराज।
बोले उन्हें छुड़ा कर तूने अनुचित किया है काज जी॥

मै बोला-कर करुणा केवल स्वामी ! मैंने छुडाया।
दुःख से बचाना प्राणीमात्र को सबने धर्म बताया जी॥

यह सुनते ही ऋषिवर वे तो आपा संभाल न पाये।
लाल लाल ऑंखे दिखलाकर मुझ पर यों चिल्लाये जी॥

धर्म धर्म क्या करता मूर्ख ! धर्म का क्षेत्र विशाल।
केवल उन्हें छुड़ा बंधन से बड़ा बना धर्मपाल जी॥

राजधर्म इतना ही है क्या इसके रूप अनेक।
क्षमा शील, संतोष, सत्य, तप, त्याग, जीवन हो नेक जी॥

राज्यदान भी राजधर्म है सुनले भूपति बात।
मैं बोला आज्ञा दो स्वामी ! दूंगा जो है हाथ जी॥

यह भी अर्पित श्री चरणों में इसमें बड़ी क्या बात।
राज्यदान वह भी ऋषि को, यह स्वर्णिम है प्रभात जी॥

अच्छा इतनी औकात तेरी जो करता मुझको दान।
तो फिर हो जा तत्पर देने बढाले अपना मान जी॥

बात बात में राजर्षि ने चाहा राज्य का दान।
हर्ष सहित मैंने भी दे दी, स्वीकृति कर सम्मान जी॥

अब तेरा पति अनाथ, निर्धन, कुछ भी नहीं है पास।
दाना भी नहीं खाने को नहीं रहने को आवास जी॥

सहस स्वर्ण मुद्राओं का ऋण सिर ऊपर फिर भारी।
मांगी दक्षिणा में यह राशि ऋषि ने सुन हे प्यारी जी॥

एक माह में ही करनी है, यह व्यवस्था सारी।
बात बताने को मैं आया आज यहाॅ पर प्यारी जी॥

बस इतनी सी बात नाथ है, अच्छे आप घबराये।
ऐसा अवसर तो जीवन में भाग्यशाली ही पाये जी॥

आपने अब तक अपना मुझको नहीं माना है लगता।
वरना ऐसा भाव कभी भी नहीं हृदय में जगता जी॥

ऋषि को देकर राज्य आपने दान का महत्व बढ़ाया।
दान, शील, तप, भाव यही तो जीवन सार बताया जी॥

अभी कहा जो स्वामी आपने मैं निर्धन अनाथ।
नहीं रहने को नहीं खाने को, कुछ भी नहीं है हाथ जी॥

क्या अनाथ वह ? जिसके पास नहीं पैसा और परिवार।
क्या सनाथ वह?धन, वैभव की जिस घर में बौछार जी॥

चक्रवर्ती जो वैभवशाली धन जन से सम्पन्न।
मगर पास नहीं धर्म पूंजी तो वह भी है विपन्न जी॥

हाट, हवेली, नोकर, चाकर, बाग, बगीचे, खजाना।
इनके बलबूते पर झूठा है जग में इतराना जी॥

धर्म नहीं तो इन सबका जीवन में नहीं कोई अर्थ।
धर्म बिना मानव कहलाना ही जग में है व्यर्थ जी॥

करके राज्य का दान आपने स्वामी ! धर्म निभाया।
अतः उचित नहीं, अनाथ निर्धन, ऐसा जो फरमाया जी॥

मन ही मन मुस्काया राजा अयि ! ओ ! रानी तारा।
आज स्पष्ट जाना तुझको तू तम में है उजियारा जी॥

मैंने तो सोचा था सुनकर करोगी भारी रोष।
खोटी खरी सुनाकर मुझको दोगी तुम तो दोष जी॥

लेकिन महानारी के गुणों से शोभित जीवन तेरा।
बात बता देने से मिट गया मन का सर्व अंधेरा जी॥

प्रिये ! तुम्हें दूं धन्यवाद उतना ही है वह थोड़ा।
सच्चा प्रेम निभाकर तूने स्वार्थों से मुँह मोड़ा जी॥

मौन तोड़ बोला राजा है गर्व मुझे तो तुम पर।
मिली मुझे नारी तुम जैसी उत्तम, सुगुणा, सुन्दर जी॥

तन ही नहीं मन भी सुन्दर है आज हो गया स्पष्ट।
एकाकी मुझ निर्णय से भी नहीं हुई तुम रुष्ट जी॥

बहुत बड़ा है त्याग तुम्हारा मुझको हर्ष अपार।
तेरे साथ जी लूंगा सुख से दुखमय यह संसार जी॥

गिर चरणों में रानी बोली बड़ी बात नहीं नाथ।
है कर्त्तव्य नारी का कि सुख-दुख में रहे वह साथ जी॥

मेरे लिए तो आप प्रमुख हैं राजकीय सुख गौण।
नारी का असली धन पति है कह वह हो गई मौन जी॥
बोल उठा नृप कुल वह धन्य जिसमें हुआ जन्म तेरा।
प्राणप्रिये! वह नगर धन्य जहाँ तुमने किया बसेरा जी॥

धन्य धन्य है मात तात और दास दासियाँ सारे।
खेल गोद में, पकड़ के अंगुली जिनके चली सहारे जी॥

मात तात की करूं प्रशंसा वह उतनी ही कम है।
संस्कार जो भरे उन्होंने सारे ही उत्तम है जी॥

मैं भी धन्य हूँ तुम जैसी पत्नि को पाकर रानी।
भाग्यशाली है अवधराज्य भी पा तुम सी महारानी जी॥

बस बस रहने दो स्वामी! मत अधिक चढ़ाओ भार।
मैं तो आपकी चरण सेविका बात न करो बेकार जी॥

अब मुझको क्या करना है वह बात आप बतलाये।
क्या रोहित को लेकर चल दे भाग्य जहाँ ले जाये जी॥

तुम्हें नहीं मुझको जाना है श्रम कर राशि लाऊं।
सहस दीनारें देकर ऋषि को अपना कर्ज चुकाऊं जी॥

तुमको जो करना वह रानी! बतलाता हूँ बात।
कुछ समय के लिए पड़ेगा तजना मेरा साथ जी॥

एक माह का समय दिया है विश्वामित्र ने मुझको।
इस अवधि में सहस मुद्राएं देनी लाकर उनको जी॥

यथा समय लाकर मुद्राएं अगर नहीं दे पाऊं।
भस्म करेंगे तीनों को क्यों कुल नाशक कहलाऊं जी॥

सुन उदास हो गई रानी क्या बनी मेरे संग बात।
बोली-अवध में रह ऋण मुक्ति हो न सके क्या नाथ जी?

अहो प्रिये! यहाँ रह करके भी अर्जित धन हो सकता।
साहस और उत्साह अगर हो कर में वैभव बसता जी॥

लेकिन ऋषि की आज्ञा है यह अवध आज ही तजना।
मेरे राज्य की सीमा छोड़ दो की है यह गरजना जी॥

समय अल्प है कहाँ जाओगे राज्य तो लम्बा चौड़ा।
आज्ञा देने से पहले ऋषि ने किया न चिन्तन थोड़ा जी॥

स्थान चुना जो मैंने रानी! वह भी तुम्हें बताऊं।
रहा स्वतंत्र सदा से काशी, अतः वहीं मैं जाऊं जी॥

अगर आप जाओ काशी तो मैं भी चलूंगी साथ।
छाया क्या काया से रहतीं कभी पृथक् हे नाथ जी॥

जैस जीवन[1] के बिन जीवन नहीं रख पाती मीन।
आप बिना वैसे ही जानिये मेरी अवस्था दीन जी॥

राजा बोला-तुम ही सोचो चलना उचित क्या साथ।
पदे पदे हैं परेशानियाँ मानो मेरी बात जी॥

कहाँ रहेंगे, क्या खायेंगे नहीं है ठौर ठिकाना।
पगबंधन है नारी भारी, विपदाएं भी नाना जी॥

फूलों पर तुम सदा चली कांटों पर कैसे चलोगी।
क्षुधा, पिपासादि के भी तुम कैसे कष्ट सहोगी जी॥

कुछ दिनों की बात रानी! जाने दो मुझे अकेला।
महलों में तुम सदा रही हो कष्ट कभी ना झेला जी॥

ऋषि की आज्ञा जाओ जल्दी जरा न देर लगाओ।
देनी दक्षिणा में जो राशि शीघ्र ही लेकर आओ जी॥

अतः पितृगृह तुम्हें छोड़ मैं करूं काशी प्रस्थान।
विलम्ब जितना होगा उससे है मुझको नुकशान जी॥

1 पानी

हरगिज भी यह नहीं होगा कि रहूं आपसे दूर।
सुख दुख संगिनी नारी होती करो न प्रिय! मजबूर जी॥

पति विरह वैसे भी होता स्त्री के लिए असह्य।
दुख का समय अगर हो तो वह और भी होता दह्य जी॥

नर-नारी संबंध इसीलिए सुख दुख में आये काम।
आपस के सहयोग से बनता जीवन सुखद, ललाम जी॥

हर आज्ञा स्वीकार मुझे पर नहीं दें यह आदेश।
कंत बिना है फीकी कामिनी, रजनी बिन राकेश जी॥

सच कहती हूँ मेरी ओर से कष्ट न कुछ भी दूंगी।
अगर आ गया कोई तो वह भी मैं हर लूंगी जी॥

मौका मिला मुझे सेवा का इसको नहीं मैं खोऊं।
आप जाओ श्रम करने को अरु सुखद नींद मैं सोऊं जी।

नृप बोला-सच कहना तुम्हारा पर विवशता मेरी।
ऋण-व्यवस्था करूँ या फिर मैं करूं व्यवस्था तेरी जी॥

अतः पिता घर रहो थोड़े दिन मानो बात हमारी।
वन-प्रांतर में नारी रत्न की रक्षा करना भारी जी॥

कुछ भी हो मैं साथ चलूंगी, रहूँ न हरगिज यहाँ पर।
समझ नहीं पाया राजा अब रोकूं मैं क्या कहकर जी॥

सच्चा स्नेह देख रानी का सोचे खुश हो भूप।
धन्य धन्य है महारानी को इसका त्याग अनूप जी॥

ऐसा त्याग करोड़ों में कोई कर सकती इक नारी।
स्वामी के हित सुख त्यागे, दुख लगे न जिसको भारी जी॥

भाग्य शाली वह नर है जो रानी सी पत्नि पाये।
पति वचनों पर निज सुखों की दुनिया को ठुकराये जी॥

निस्पृह, निश्छल, निरपेक्ष प्रेम है इसका जाना आज।
क्यों मोड़ा था मुँह मेरे से वह भी समझा राज जी॥

कर्त्तव्य भुलाया था मैंने रानी के मोह में पड़कर
लेकिन नारी धर्म निभाया इसने मुझे जगा कर जी॥

इस जैसी नारी के संग रह दुख भी होगा हलका।
राज्य वैभव छिन जाने पर भी जरा नहीं दुख झलका जी॥

बोला नृप-सुभाव तुम्हारे फिर भी सोच लो मन में।
कष्ट सिवाय नहीं है कुछ भी सच परदेश विपिन में जी॥

साधारण जनवत् ही वहाँ पर समय पड़ेगा बिताना।
राजा-रानी हम अवध के होगा वहाँ भुलाना जी॥

स्वामी! मेरी तनिक भी चिन्ता आप हृदय नहीं लाये।
एक प्रार्थना बस मेरी है साथ मुझे ले जाये जी॥

राजा बोला नहीं मानो तो हो जाओ तैयार।
मूल्यवान जो वसन, आभूषण देओ उन्हें उतार जी॥

पहने वस्त्रों सिवा साथ में हमें नहीं कुछ लेना।
है भंवर में नाव हमारी फिर भी उसको खेना जी॥





पंचम किरण

काशी प्रस्थान

राजनीति में धर्म को, प्रथम देत जो स्थान।
शरणागत वत्सल बने, राजा वही महान्॥१॥

सौम्य भाव झलके वदन, करे प्रजा कल्याण।
अहं कभी पाले नहीं, राजा वही महान्॥२॥

धर्म नहीं अपना तजे, तजदे चाहे प्राण।
रहे सुमेरु आंधी में, राजा वही महान्॥३॥

अरिदल के जो मध्य में, घूमे सिंह समान।
उडुगण में शशधर सरिस, राजा वही महान्॥४॥

धूप शीष पर सह सदा, जनहित बने वितान।
प्यास बुझाये मेघ बन, राजा वही महान्॥५॥

विश्वामित्र को राज्य दे, करे काशी प्रस्थान।
हरिश्चन्द्र का अब करे, आगे पुनः बखान॥६॥

सचिव, मंत्री हतप्रभ सभी, ऋषि के प्रति है रोष।
राजर्षि को मन ही मन, रहे सभी वे कोस॥७॥

पूर्ववत्

रोष में भर कर ज्यों ही सभासद सभा से बाहर आये।
तमतमाते चेहरे देखकर हलचल मन मच जाये जी॥
बात हुई क्या लाल नयन क्यों जल्दी हमें बताये।
जो जो मिला मार्ग में उनको, बात एक दोहराये जी।
भाग्य रूठा क्या अवध प्रजा का बादल दुख के छाये।
अरिदल ने क्या बिना सूचना अपने शस्त्र उठाये जी।
बोले- क्रोध में भर करके वे विश्वामित्र ऋषि दुष्ट।
महाराज श्री हरिश्चन्द्र से आज हुए वे रुष्ट जी॥
राज्य दान में मांगा उनने रखी शर्त फिर साथ।
बिना दक्षिणा राज्य दान की रुचे न राजन् ! बात जी॥
दान हेतु अब राजकोष तो नृपति छू नहीं पाये।
अतः मुद्रा लाने काशी वे श्रम करने हित जाये जी॥
हाहाकार मचा नगरी में फैली बात सब ओर।
अरे कहाँ से काली रजनी आ गई डसने भोर जी॥
बहुत सुखी थी जनता पाकर ऐसा न्यायी भूप।
राजा क्या था भाग्य अवध का ही था वह अनूप जी॥
कहाँ मिले नृप ऐसा प्रजा को धर्मनिष्ठ उपकारी।
धीर, वीर, गंभीर, हितैषी, दुखभंजक, सुखकारी जी॥
दृढ़ प्रतिज्ञ, विज्ञ, हितचिंतक, परम यशस्वी, दयालु।
प्रजानुरंजक अमल, अनिंद्य, अस्पृह और कृपालु जी॥
कुछ भी हो हम तो नृप को नहीं अवध से जाने देंगे।
आगे बढ़कर उनके पथ को रोक सभी हम लेंगे जी॥

ऋषि होकर भी राज्य पाने का लालच मन में जागा।
अगर राज ही करना तो क्यों राज्य स्वयं का त्यागा जी॥

बड़े क्रोधी ये विश्वामित्र जी, राज करेंगे हम पर
अवधपुरी भगवान् भरोसे क्या बीतेगी सब पर जी॥

लेके राज्य भी तोष नहीं जो दक्षिणा मन को भाई।
नगर छोड़ने की कहते नहीं शर्म जरा भी आई जी॥

हलचल मच गई पूरे शहर में छाया भारी रोष।
काला नाग है विश्वामित्र तो रहे सभी यों कोस जी॥

महामंत्री जी पोल आपकी हम तो इसमें माने।
रहते आपके हुआ क्यों ऐसा लगे लोग चिल्लाने जी॥

अरे भाइयो ! होके शांत कुछ बात मेरी तुम सुनलो।
कारण जाने बिना क्रोध क्यों बन हंसा मोती चुनलो जी॥

शुरु से आखिर तक की घटना महामंत्री ने सुनाई।
बने क्रोध से तो कुछ भी नहीं बात उन्हें समझाई जी॥

स्वयं दान दे महाराज ने मस्तक उन्हें झुकाया।
तो फिर रोष करे क्यों हम यह सबको ही समझाया जी॥

भला कौन चाहता है हमसे दूर हटे महाराज।
रहे सदा नयनों के सामने है अन्तर आवाज जी॥

प्रयत्न ऐसा करें सभी हम बने ऋषि अनुकूल।
राशि दक्षिणा ले ले हमसे मिट जाये सब शूल जी॥

राज्य भले ही करे वे हम पर हमें नहीं एतराज।
लेकिन अवध छोड़ करके तो नहीं जाये महाराज जी॥

घेर लिया मंत्री को सबने भीड हो गई भारी।
राशि जितनी चाहे ले ले बोली जनता सारी जी॥

बोला मंत्री उपाय मुझको एक नजर है आये।
कुछ प्रतिष्ठित व्यक्ति मिलकर ऋषि पास में जाये जी॥

करें निवेदन उनसे जाकर सविनय जोड़ के हाथ।
नृप अवध में रहे आप यह आज्ञा दिराये नाथ जी॥

अच्छा लगा सभी को यह महामंत्री का सुझाव।
सच है दक्ष, विज्ञ नाविक ही पार लगाता नाव जी॥

धैर्य कहाँ, जन बोले जल्दी ऋषि पास में जाओ।
जो आज्ञा दी वापस ले ले, कैसे भी उन्हे मनाओ जी॥

शीघ्र सलाह कर विज्ञ व्यक्ति कुछ पहुँचे ऋषि के पास।
हे प्रभो! जागे सद्बुद्धि उनमें फले हमारी आस जी॥
लिए कमण्डल विश्वामित्र जी इतस्ततः वहाँ डोले।
सूंघ गया हो सर्प उन्हें बस कुछ भी नहीं वे बोले जी॥

क्या सोचा क्या हुआ है भगवन्! किस्मत का क्या खेल।
पत्थर फैंक गगन मे मैं तो सिर पर रहा हूँ झेल जी॥

राज्य बंधन से मुक्त हो गया वह तो करके दान।
मेरा क्रोध भी उसके लिए तो बना मानो वरदान जी॥

मुझे राज्य से क्या लेना था केवल यही विचार।
किसी तरह भी हरिश्चन्द्र वह भूल करे स्वीकार जी॥

लेकिन सोचा जो जो मैंने एक भी हुआ न पूर्ण।
नृप आगे तो सब इच्छाएं हो गई मेरी चूर्ण जी॥

उसे झुकाने आया मैं पर हुई यहाँ मम हार।
मुझ पर अंगुली उठा रहे सब उसकी जय जयकार जी॥

उथल-पुथल यों मची हुई है ऋषि के मन में भारी।
इतने में आ अनुचर ने वहाँ बात यह उच्चारी जी॥

ऋषिवर! आपसे मिलने हेतु प्रमुख प्रजाजन आये।
खड़े हैं बाहर अगर आज्ञा हो, अन्दर उनको लाये जी॥

समझ गये ऋषि क्यों आये हैं, पर अब क्या हो सकता।
विषधर से अमृत क्या कोई इस जग में पा सकता जी॥

आये हैं आ जाने दो ऋषि बोले क्रोध में भरकर।
सेवक पीछे हट गया तत्क्षण विश्वामित्र से डर कर जी॥

सोच रहे ऋषि आयेंगे ही भूप प्रति है प्रेम।
क्यों न उन्हें चाहे जनता जो चाहे सबका क्षेम जी॥

आशा लेकर के आये हैं शायद मान मैं जाऊं।
लेकिन हूँ सूखी लकड़ी सा कभी नहीं मुड़ पाऊं जी॥

कहा-सेवक से कहदो उनको अन्दर वे आ जाये।
क्या कहना चाहते हैं आकर मुझको अभी बताये जी॥

अब मैं ही हूँ राजा इनका आज से आगे मानो।
नये राजा की रीति नीति आकर सभी पहचानो जी॥

शिष्ट मण्डल ने अन्दर आकर ऋषि को किया प्रणाम।
विश्वामित्र जी बोले तुमको क्या है मुझसे काम जी॥

करने निवेदन हम आये हैं श्री चरणों में आज।
चर्चा नगर में राज्यदान कर चुके अवध महाराज जी॥

सहस्त्र स्वर्ण दीनारों का भी उनके ऊपर भार।
फिर आज्ञा है अवध त्याग की सुन आया विचार जी॥
सम्पूर्ण राज्य दे दिया जिन्होंने बन करके उदार।
ऐसे दानी को यह आज्ञा सोचे खुद सरकार जी॥
लाल नेत्र कर विश्वामित्र जी उन लोगों पर बरसे।
हरिश्चन्द्र ने राज्य दिया है मुझको अपने कर से जी॥
राज जाने बिन किसी बात का उचित नहीं आरोप।
लिया नहीं नृप ने ही मुझको दिया हर्ष से सौंप जी॥
दिया राज्य क्यों इसने मुझको यह भी मुझसे सुनलो।
कहाँ कौन दोषी है इसमें निर्णय तुम ही करलो जी॥
कतिपय सुरबालाओं ने आ आश्रम मेरा उजाड़ा।
ज्ञात हुआ जब मुझको मैंने जाकर उन्हें लताड़ा जी॥
असर हुआ नहीं कुछ भी उल्टा किया मेरा उपहास।
तप के तेज से जकड़ा मैंने फैंक मंत्र का पाश जी॥
इस करुणा सागर ने आकर कर दिया उनको मुक्त।
कारण जाने बिना छोड़ना क्या था यह उपयुक्त जी॥
मैंने जिनको दण्ड दिया क्यों खोला उसने आकर।
मालूम करना उसे चाहिए पहले मुझसे मिलकर जी॥
एक किया अपराध ऊपर से कहे कर्त्तव्य निभाया।
राजधर्म है दुख से छुड़ाना करके वही दिखाया जी॥
बात धर्म की आई सामने तब मैं उससे बोला।
क्षेत्र धर्म का बहुत बड़ा है तूने कभी है तोला जी॥

राज्य दान भी राजधर्म का होता एक प्रकार।
बस इतना कहते उसने तो देना किया स्वीकार जी॥

फिर भी मैं लेने को सहज में नहीं हुआ तैयार।
राज्यदान नहीं हँसी खेल है समझाया कई बार जी॥

महादानी होने की धुन उस के सिर हुई सवार।
समझाने पर भी नहीं समझा। मैंने किया स्वीकार जी॥

अब तुम ही बतलाओ इसमें मेरा क्या है दोष।
तुमने भी परखी न सच्चाई झूठा मुझ पर रोष जी॥

मुझे जरुरत कहाँ राज्य की मैं खुद ही तज कर आया।
स्वेच्छा से संन्यास मैंने तो जीवन में अपनाया जी॥

अभी क्षमा कर दूं उसको मैं भूल करे अंगीकार।
पर उसको धर्मी होने का चढा हुआ बुखार जी॥

मैं भी क्या कर सकता इसमें हठ जब नहीं वह छोड़े।
है उपचार न कोई उसका प्रस्तर ले सिर फोड़े जी॥

दिया उन्होंने लिया आपने हमें नहीं एतराज।
हम तो केवल यही चाहते सुनिये हे ऋषिराज जी॥

राज्य कीजिए निर्भयता से बाधक हम न बनेंगे।
यह भी है विश्वास राज्य नहीं पुनः भूपति लेंगे जी॥

केवल एक प्रार्थना मुनिवर! हाथ जोड़ हम करते ।
ऋषि, मुनि, तो वैसे भी दयालु दुःख सभी का हरते जी॥

अपकारी-उपकारी में भी भेद नहीं वे करते।
पर दुःख कातर दिल संतों का देख न दुख वे सकते जी॥

महाराज पर मुद्राओं का जो ऋण है हे ऋषिवर।
कितना भी हो वह सब हम देने को हैं तत्पर जी॥

हर आज्ञा स्वीकार्य आपकी जो भी मिलेगी हमको।
लेकिन अवध छोड़ जाने को बाध्य न करिये नृप को जी॥

मुझे मुझे ही कहे जा रहे उसे न क्यों समझाते।
भूल न माने क्यों अपनी वह ऋषि बोले चिल्लाते जी॥

दर्द तुम्हे इतना राजा का जा उसको समझाओ।
भूल मानले अगर वह अपनी पास मेरे फिर आओजी॥

यह तो बात आप वे जाने हमें नहीं कुछ लेना।
ऋण मुक्ति हित हमें तो कहिये कितना धन है देना जी॥

छू चरणाम्बुज विनती करते आप से हम हे स्वामिन्।
नगर छोड़ जाने की आज्ञा वापस लेवें भगवन् जी॥

अरे मूर्खो! मैं कब कहता कि अवध छोड़ वह जाये।
आदत से लाचार वह तो झुकना उसे न आये जी॥

अधुनापि कुछ नहीं बिगड़ा है जा उसको समझा दे।
जिद्द छोड़ दे अपनी वह तो अभी राज्य लौटा दे जी॥

राज्य लौटाने की तो ऋषिवर नहीं करते हम बात।
मात्र भावना एक हमारी अवध न छोड़े नाथ जी॥

आँखें थकती नहीं हमारी देख भव्यता जिनकी।
सदा बसाये रहते हम तो सूरत मन में उनकी जी॥

प्राण चले जाने पर देह का किंचित् भी नहीं मोल।
हम भी राजा के पीछे हैं सच कहते दिल खोल जी॥

उत्तर कुछ सूझा नहीं ऋषि को क्या दूं इन्हें जवाब।
प्रजाजनों का बढ़ता जा रहा मुझ पर तो दबाव जी॥

टूट जायेगा एरण्ड लेकिन झुकना उसे न आता।
रखने बात निज दुराग्रही भी सत्य सदा ठुकराता जी॥

अरे सैनिको ! देख रहे क्या ऋषि बोले ललकार।
सभा से बाहर करदो उनको प्रजा भूप एकसार जी॥

हमें हटाने की नहीं जरुरत जा रहे अपने आप।
कहकर इतना निकल पड़े सब देखे ऋषि चुपचाप जी॥

राज्य प्रलोभन में फॅस ऋषि ने ऋषिपन दिया विसार।
महात्यागी के संग भी ऐसा असत् दिया व्यवहार जी॥

सरोष सारे ही वे सज्जन सभा से बाहर आये।
जन समुदाय विशाल खड़ा वहाँ मन में आश लगाये जी॥

शिष्ट मण्डल को देख दौड़ सब आये उनके पास।
ऋषि ने जो वहाँ रंग दिखाया सुनकर हुए हताश जी॥

उबल पड़ा सुन खून सभी का चेहरे हो गए लाल।
मन-भूतल पर आया जोर का जनता में भूचाल जी॥

हा! हितैषी हरिश्चन्द्र से शासक का यह हाल।
क्या होगा इस अवधपुरी का मन में उठे सवाल जी॥

समूह बनाकर स्थान स्थान पर खड़े हो गए लोग।
मुख मुख पर बस बात एक है यह क्या बना संयोग जी॥

रश्मिरथ पर बैठ के रवि भी आया मध्य गगन में।
इधर अवध पूरा ही लगा है जलने विरह अगन में जी॥

जनरव सुन कलरव विहगों का रह रह शोर मचाये।
मत जाओ मत जाओ स्वामिन्! मानो भाव जताये जी॥

इधर भूप रानी ने सादे वसन लिए हैं धार।
उतना ही अच्छा होता है जितना हल्का भार जी॥

सौन्दर्य सहज नहीं छिपता है, हों वस्त्र भले ही कैसे।
उतर स्वर्ग से पैदल चल रहे तीनों लगते ऐसे जी॥

मुख मण्डल पर झलक रहा है सत्य धर्म का तेज।
दमक रहा है रूप अनोखा मानो रखा सहेज जी॥

जैसे निकले घर से योद्धा लेकर हर्ष उमंग।
चला महल से भूपति वैसे रानी रोहित संग जी॥

किंचित् भी नहीं विषाद मन में बना भूप से रंक।
चलित नहीं कर पाये नृप को विश्वामित्र का डंक जी॥

देख उन्हें जाते जनता के नयन सजल हो आये।
आनन-उत्पल मुरझाये सब दुःख ना हृदय समाये जी॥

उतर महल से सीधे ही वे ऋषि पास है आये।
दीनवेश में गमनोद्यत लख विश्वामित्र चकराये जी॥

क्या सचमुच ही राज्य छोड़ जाने का बन गया मानस।
चहुँ ओर इससे तो मेरा फैल जायेगा अपयश जी॥

मैं तो सोच रहा था यही कि घर जाने की देर।
नशा दानवीर होने का हो जायेगा ढेर जी॥

राज्यदान की सुनते ही तो बरस पड़ेगी रानी।
कोसेगी वह हरिश्चन्द्र को कैसी यह नादानी जी॥

कौन कष्ट चाहेगी नारी, सुख वैभव को छोड़।
अपना किया आप ही भोगो कह देगी मुख मोड़ जी॥

निश्चित ही भावी कष्टों से घबराकर महारानी।
राज्यदान में बनेगी बाधक लेकिन देख हैरानी जी॥

हास्य आस्य[१] पर लेकर यह तो पीछे पीछे चलती।
अंधकार में दिव्य ज्योति सी तारा रानी जलती जी॥

चक्रवर्ती के मन में जब वैराग्य भावना जागे।
सहजतया तृणवत् वह अपनी राज्य संपदा त्यागे जी॥

वैभव उसको रोक न पाता वही हुई यहाँ बात।
स्त्री, सुत को संग लेकर देखो चला अवध का नाथ जी॥

हुई परीक्षा हम दोनों की वह जीता मैं हारा।
इसी बात का धधक रहा है मेरे मन अंगारा जी॥

हाय! मैंने जो जो सोचा वह एक नहीं हो पाया।
देखो इस तारा को जिसने पति हित सब ठुकराया जी॥

मेरी ओर ही चले आ रहे जाने क्या कहने को।
क्षमा मांग ले तो मैं कह दूं इन्हें यहीं रहने को जी॥

इतने में आ हरिश्चन्द्र ने ऋषि को किया प्रणाम।
उतरी भोर नृप के चेहरे पर ऋषि के छाई शाम जी।

अरे अभी तक नहीं गये क्या फिर आये मुझ पास।
अवध वासियों से करवाते क्यों मेरा उपहास जी॥

आज्ञा लेने ही आया हूँ करुं अभी प्रस्थान।
प्यारी प्रजा का पुत्र सदृश प्रभु रखना पूरा ध्यान जी॥

१ – मुख

प्रजा प्रजा क्या गीत गा रहा प्रजा नहीं अब तेरी।
वहीं करुंगा अब तो मैं जो इच्छा होगी मेरी जी॥

राग राज्य से अभी तुम्हारा लगता नहीं गया है।
निर्णय मैंने बदला होगा शायद सोच लिया जी॥

नहीं राग है मुझे राज्य से भ्रम को स्वामी हटाये।
आशीर्वाद मात्र लेने हम तीनों ही यहाँ आये जी॥

रहने दे रहने दे राजन्! मत दिखला होशियारी।
एक माह में सहस दीनारें देनी लाकर सारी जी॥

यथा समय नहीं दे पाओ परिणाम अशुभ ही जानो।
बेटी तारा कहो पति से बात अधिक नहीं तानो जी॥

क्या कहूँ कि रत्न छोड़कर काच शकल अपनाये।
दो आशीष आप तो ऋषिवर राशि दक्षिणा पाये जी॥

इतना कह, कर प्रणाम तीनों सभा से बाहर आये।
जाते देख उन्हें ऋषि वे तो हतप्रभ हो जाये जी॥

शब्द एक फूटा नहीं मुख से चिन्ता मन में छाई।
बैठे बिठाये अच्छी आफत मैंने तो है बुलाई जी॥

निकल सभा से तीनों प्राणी राजमार्ग पर आये।
नरनारी नयनों में अश्रु लिए खड़े हैं पाये जी॥

अपने प्रिय राजा रानी को जाते देख नरनारी।
निकल पड़े निज निज निलयों से लेकर के मन भारी जी॥

उदास हो गए चेहरे सब के मन में दुख न समाये।
हे प्रभो! अवधपुरी पर क्यों ये विपदा के घन छाये जी॥

आगे आगे वे तीनों और पीछे जनता सारी।
कोई किसी से बोल रहा नहीं मन में पीड़ा भारी जी॥

बहुत दूर जब पहुंच गये वे चलते चलते सारे।
महाराज ने कहा उन्हें सब वापस आप पधारें जी॥

विनती मेरी आप सभी से लौट शीघ्र अब जाये।
ताकि संध्या से पहले हम सीमा पार कर पायें जी॥

मुड़ा न पीछे कोई भी जब बार बार कहने पर।
लगा सोचने अवधपति वह मन ही मन घबराकर जी॥

अगर नहीं ये गये वापस तो मुश्किल होगी भारी।
सोचेंगे ऋषि भड़का ले गया कर गया नृप गद्दारी जी॥

बडे वक्र हैं ऋषिवर वे विपरीत अर्थ ही लेंगे।
इनकी भावना नहीं देखेंगे दोष मुझे ही देंगे जी॥

अतः प्रेम से कहा भूप ने भला मेरा जो चाहो।
हाथ जोड़ कहता हूँ मैं कि शीघ्र आप मुड़ जाओ जी॥

सूरज सिर पर चढ आया है दूर हमें बहु जाना।
अगर नहीं हम गये ऋषि का सुनना होगा उलाहना जी॥

करुं आपसे यही अपेक्षा निज कर्त्तव्य निभाये।
स्नेह दिया जो मुझे आपने वैसा ही ऋषि पाये जी॥

बोला एक तब मन न मानना आप अकेले जाये।
इतनी छूट तो हमें दीजिए सीमा तक पहुँचाये जी॥

कहा अन्य ने नहीं नहीं हम काशी पहुँचा आये।
तभी हमारे जलते मन को शान्ति कुछ मिल पाये जी॥

एक कहे स्वामी सेवा में ही मैं समय बिताऊं।
कोई नहीं है रोने वाला पुनः यहाँ जो आऊं जी॥

अपने अपने भाव हृदय के सब ही यो दरसाये।
हरिश्चन्द्र तब एक बार फिर उन सबको समझाये जी॥

ऋषि की आज्ञा का उल्लंघन मैं तो नहीं कर पाऊं।
रोहित तारा सिवा किसी को साथ नही ले जाऊं जी॥

सह गमन नही हित मे मेरे समझो मेरी बात।
बातों ही बातों में हो नहीं जाये यहीं पर रात जी॥

नाराज नही मैं आप किसी से पर विवशता जानो।
शीघ्र जाने दो काशी मुझको आग्रह मेरा मानो जी॥

धर्म पालन करने मे भाइयो! बाधक बनो न आप।
प्यार आपसे जो पाया है धर्म का ही प्रताप जी॥

अगर धर्म ठुकरा कर मैं जो करता अत्याचार।
तो क्या मुझे आपसे मिलता मिला आज जो प्यार जी॥

न्याय नीति से ही मैंने अपना यह राज्य चलाया।
उसी का फल है अवध उलट कर चला यहाँ तक आया जी॥

अगर धर्म से हट मैं चलता प्रजा को पीडित करता।
सब खुश होते जाते देखकर नयन नीर नहीं झरता जी॥

अतः आप से मेरा निवेदन करें मुझे सहयोग।
धर्म मुख्य है इस जीवन में नहीं महल के भोग जी॥

जनता अगर नगर में नहीं हो किस पर होगा राज।
विश्वामित्र जी राजमहल में करें प्रतीक्षा आज जी॥

महामनीषी, उग्र तपस्वी राजधर्म वे जाने।
विनती आपसे उनको ही अब अपना राजा माने जी॥

सच्चा स्नेह अगर है मुझसे कहना मेरा मानो।
हमें अकेले ही जाने दो समय आप पहचानो जी॥

सुन सन्नाटा वहाँ छा गया कोई न मुख से बोला।
मन ही मन कहते ऋषि को तो यह विष उनने घोला जी॥

पीना पड़ेगा विवश होकर और न कोई चारा।
महामंत्री जी बोल उठे वे अवध भाग्य का मारा जी॥

अपने प्रिय राजा की आज्ञा लोप नहीं वे पाये।
लेकिन बढ़ता अश्रु प्रवाह तो रोके नहीं रुकाये जी॥

नीर नयन से बरस पड़ा है कैसी घटा यह आई।
कुछ तो इतने रोये कि आखें भी पथराई जी॥

श्यामल नयनों में अरुणाई गीले हो गये गाल।
पांव हो गए जड़वत् सबके रुकी आगे की चाल जी॥

भूली चहकना चिड़ियाएं कोकिल भी कुहुक न पाई।
मोरों ने निज पंख समेटे कैसी विपदा आई जी॥

बंद कुलाचें हुई हिरणों की मानो पॉव गड़े हैं।
सर्प नेवले वैर भूल कर वन में पास खड़े हैं जी॥

शुक मैना भी शांत खड़े ना पपीहा पीऊ पुकारे।
खोई खोई आंखों से सब वन में उन्हें निहारे जी॥

मातृभूमि को कर नमन संबोधित कर नर नारी।
चल पड़े महाराज वहाँ से छोड़ के जनता प्यारी जी॥

हाथ पकड़ रोहित का जल्दी जल्दी कदम बढ़ाये।
घटा आँखों में जो उमड़ी है बरस कहीं नहीं जाये जी॥

अहो! अहो!! इन नगर जनों का कैसा प्रेम अटूट।
पाँव तो आगे बढ़ रहे पर मन रहा पीछे छूट जी॥

इधर नागरिक देख रहे अपने प्रिय नृप को जाते।
सहन हो रहा नहीं है मनको पर कर भी क्या पाते जी॥

देते रहे दिखाई जब तक रहे देखते सारे।
ओझल होने पर नरनारी लौटे सब मन मारे जी॥

मात्र श्वांसों का ही स्वर था नहीं और कोई आवाज।
भारी मन धड़कन का उस पल गूंज रहा था साज जी॥

आ पहुँचे सब नगर में लेकिन मन सबके उदास।
भूपति के संग चला गया मानो उनका उल्लास जी॥

कृषक, व्यापारी चरवाहे सब खडे बैठे तज काम।
भरी दुपहरी में उतरी है कैसी नगर में शाम जी॥

भर भर आँखें आये उनकी ऋषि को रहे हैं कोस।
कैसा वैर लिया है ऋषि ने रह रह उभरे रोष जी॥

धूंआ न उस दिन उठा नगर में सूने पड़े थे कूप।
सरयू की लहरें भी बोली छोड़ गए हैं भूप जी॥

आते दौड़कर दास दासियां सुनते एक आवाज।
आज धर्म हित चले अकेले पैदल ही महाराज जी॥

कैसे कैसे रत्न धरा पर क्या क्या नाम गिनाये।
याद आते ही उनकी उर मे उमड़ श्रद्धा तो आये जी॥

राजवैभव भी तुच्छ लगा था उन्हें धर्म के आगे।
कइयों ने तो अवसर आये प्राण भी अपने त्यागे जी॥

समझ लिया उन्होंने जग में धर्म ही सच्चा साथी।
दीपक सम इस जीवन में तो धर्म है जलती बाती जी॥

अवध राज्य का देखो स्वामी कल तक जो प्रियकारा।
चला अकिंचन बन अकेला ले संग रोहित, तारा जी॥

तात मात सह रोहित भी तो चल रहा नंगे पॉव।
हँसता हुआ बैठ जाता है देख वृक्ष की छाँव जी।

जल्दी जल्दी बढ़ रहे आगे ले मन में उत्साह।
यथा समय ऋण चुके ऋषि का मात्र एक है चाह जी॥

रत्न जटित आंगन पर चलते वे ही देखो आज।
पैदल बिन पदत्राण[1] रहे चल धर्म पे कैसा नाज जी॥

कंकर कभी, कभी कांटे उनके पॉवों में चुभते।
बिन परवाह किए बढ़ते वे वन में बैठते उठते जी॥

तेज धूप अरु गति श्रम से अब झरने लगा पसीना।
देख दया दिनकर को आई हाय यह क्या जीना जी॥

तभी क्षितिज से निकल के बदली वहाँ व्योभ में छाई।
मानो प्रकृति ने उनके हित छाता दिया तनाई जी॥

दूर कहीं बरसे हों बादल ठण्डी चली हवायें।
प्यास नहीं जगने दे वे तो भू की तपन घटाये जी॥

प्राची से चल शनैः शनैः रवि पश्चिम में अब आया।
अंशुपति को जाते देखकर तिमिर वहाँ मुसकाया जी॥

[1] जूते, चप्पल

जब तक दिनकर रहे गगन में तम की दाल न गलती।
अस्ताचल को चले रवि तो बाहें उसकी खिलती जी॥

पाप शक्तियाँ अंधकार में ही होती बलवान।
पर अन्तर में दीप जले क्या कर पाये शैतान जी॥

चहुँ और छा गया अंधेरा जंगल वह भयानक।
उपयुक्त स्थान नहीं दिया दिखाई उन्हें ठहरने लायक जी॥

बहुत दूर जाने के बाद एक सघन तरु वहाँ आये।
सोचा आज इसी के नीचे रहकर रात बिताये जी॥

इधर भूख और उधर थकावट तन उनका सुस्ताया।
सो करके विश्राम करें यह चाहे उनकी काया जी॥

महलों मे जो कभी सोता था स्वर्ण रत्न झूले पर।
उस रोहित को सुला दिया है धरा पे थपकी देकर जी॥

पंच धात्री से पला जो सुख में वही तारा का लाल।
भूखा प्यासा सोया नींद में पूछे बिना सवाल जी॥

'स्वामी! आज लाल यह मेरा देखो भूखा सोया।
समझ गया है परिस्थिति को इसीलिए नहीं रोया जी॥

आखिर किसका सुत है रानी विचार यह तो लाये।
संस्कार जिस कुल के पाये कैसे उन्हें भुलाये जी॥

समय तेरी भी बलिहारी है महलों में जो सोते।
पहरेदार द्वार पर निशदिन सजग खड़े जहाँ होते जी॥

आज अकेले ही है वन में वे तीनों ही प्राणी।
घने जंगल में वृक्ष तले उनको तो रात बितानी जी॥

भूप कहे सो जाओ प्यारी करूं मैं पहरेदारी।
जंगल में हिंसक पशुओं का भय रहता है भारी जी॥

मैं सोऊं सुख निद्रा में अरु आप यहाँ पर जागे।
नाथ! नहीं होगा ऐसा तो भाव हृदय के त्यागे जी॥

बैठ गये दोनों ही वे ले वृक्ष तने का सहारा।
बारी बारी झपकी ले रहे रोहित सोया प्यारा जी॥

चरम प्रहर रजनी का आया उठ गये राजा रानी।
ईश भजन में बैठ गये वे समय भोर की जानी जी॥

निकल क्षितिज से दिनकर ने भी देखा उनका हाल।
महारानी संग आत्मलीन हैं हरिश्चन्द्र भूपाल जी॥

संस्पर्श भव्य भानुकिरणों का पाकर जागा रोहित।
चरण छुए हैं मात तात के प्रकृति देख हुआ मोहित जी॥

शशकों के शावक कुछ बैठे कुछ वहाँ दौड लगाये।
हरित भरित वह धरा देख के रोहित मन हरसाये जी॥

संदेश प्राप्त कर दिनपति का आंखें सबने ही खोली।
चहचहाई चिड़ियाएं अरु कुहू कुहू कोकिल बोली जी॥

कलरव विहगों का लगता है नभपति स्वागत गान।
फैल रहा रवि का सतरंगी गगन में भव्य वितान जी॥

फर फर उड़ने लगे हैं पंछी जंगल में चहुँ ओर।
सुरभित शीतल, मंद पवन का प्रारम्भ हुआ है दौर जी॥

उठ तीनों ही चले वहाँ से दृश्य है प्यारा प्यारा।
वृक्ष, वल्लरी लदे फलों से प्रकृति ने उन्हें संवारा जी॥

प्रातराश हे कहाँ वहाँ पर निकट विटप के आए।
मधुर मधुर फल गिरे देख हर्षित हो उन्हें उठाये जी॥

कर-कमलो में उठा फलों को चलते खाते जाते।
सर सरिता का जल पी पीकर अपनी तृषा मिटाते जी॥

आतप से कहीं झुलस न जाये कोमल सुन्दर गात।
अतः रहम ला तत्क्षण मानो बहने लगा है वात जी॥

पथ में खडे विटप वायु में लहर लहर लहराये।
हिला हिला मानो टहनियाँ विश्राम करो बतलाये जी॥

स्वर्ग छटा क्या नयन लुभाये भू सौन्दर्य निराला।
लगा भूप को आज तो मानो पिया है अमृत प्याला जी॥

कृत्रिम हवा भले ही घर मे शीतल और सुहानी।
लेकिन वन प्रान्तर की वायु कहती अलग कहानी जी॥

सुन्दर ताल देखकर रोहित बोला पीऊं पानी।
थक कर चूर लाल हो गया यह दशा तारा ने जानी जी॥
सुन्दर सुन्दर कमल खिले है तेरे हंस का जोडा।
घने विटप तट के ऊपर विश्राम करे यहाँ थोड़ा जी॥

जल पीना हो पीलो जल्दी समय अधिक नहीं पास।
आज रात्रि तक काशी में जा करना हमें निवास जी॥

पहुँच वहाँ पर मुझको रानी करना बहुत ही काम।
राजर्षि का ऋण जो सिर पर भरना मुझे तमाम जी॥

पहुँच पुलिन[1] पर पीकर पानी प्यास उन्होंने बुझाई।
चल पड़े फिर आगे को वे तनिक न देर लगाई जी॥

१ – किनारा

वन-सुषमा का आनन्द लेते आगे बढते जाये।
दूर न काशी अधिक रही अब नृप रानी को बताये जी॥

देखो उड़े पताकाएं वे अम्बर में हे तारा!
गंगा की धारा भी दिख रही, जाना लक्ष्य हमारा जी॥

अब तो और अधिक जल्दी ही उठने लगे हैं पाँव।
बड़े बड़े पेड़ों की लुभायें नयनों का वह छॉव जी॥

सौध शिखर भी लगे हैं दिखने सुन्दर और विशाल।
काशी ऐसी लग रही मानो भू नभ मध्य प्रवाल जी॥

कुछ ही समय पश्चात् पहुँच वे गये गंगा के पास
देख निकट काशी को उनके आई सांस में सांस जी॥

बोली तारा-स्वामी! गंगा शोभा मन मम हरती।
हरी भरी कैसी मोहक है यह पावन धरती जी॥

मन करता है यहीं कहीं हम अपनी कुटी बनाये।
नगरों का कोलाहल मन को शान्ति नहीं दे पाये जी॥

अहा! भव्य नव्य मनहर छवि लख नाचे मन मोर।
भीड़भाड़ का काम नहीं है, नहीं है कुछ भी शोर जी॥

जलवायु भी कितनी शुद्ध है रोग फैल नहीं पाये।
इच्छा होती नहीं यहाँ से आगे कदम बढ़ाये जी॥

कितनी शान्ति, कैसा आनन्द, स्वर्ग उतर है आया।
इन्हें देख महलों का वैभव फीका अब तो पाया जी॥

सच है, दूषित हुए आज तो महानगर ही सारे।
दिन में भी नहीं देता सुनाई कोलाहल के मारे जी॥

धुआं वाहनों का इतना कि दुष्कर लेना सांस।
भागदौड की वहाँ जिन्दगी झूठा सब उल्लास जी।

महानगरों में पानी शुद्ध कहाँ घुले रसायन उसमें।
हर वस्तु में मिले मिलावट देखो चाहे जिसमें जी॥

वैज्ञानिक चिंतित हैं सारे प्रदूषण रफ्तार।
अगर रही बढ़ती यों ही तो जीना होगा भार जी॥

प्रभुवीर की शिक्षाओं को विश्व यदि अपनाये।
खोया सुख अपने हाथों से मानव फिर से पाये जी॥

एक एक सिद्धान्त प्रभु का पर्यावरण बचाता।
अगर सभी जन चले उन्हीं पर रोग, शोक, हट जाता जी॥

कहा वीर ने वृक्ष न काटो, व्यर्थ न नीर बहाये।
गृहस्थ चले मर्यादा में तो आफत कभी न आये जी॥

लेकिन लालच देखो नर का जंगल दिए हैं काट।
अब वर्षा की नित प्रति उनको जोहनी पड़ती बाट जी॥

कहीं बाढ़, कहीं सूखा पड़ता, भूकम्पन कहर ढ़हाये।
असतुलित हुई प्रकृति पर सजग न जन हो पाये जी॥

यही स्थिति यदि रही आगे तो मुश्किल-होगा जीना।
राशन से पानी ले सबको पड़ेगा फिर तो पीना जी॥

बोला राजा प्रकृति-प्रांगण का आनन्द ही कुछ ओर।
लेकिन लक्ष्य दूसरा अपना अतः चले नहीं जोर जी॥

क्यो घबराते स्वामी आप यों सब कुछ अच्छा होगा।
उत्तम है उद्देश्य हमारा फल भी उत्तम होगा जी॥

चलते चलते नगर द्वार तक आए राजा रानी।
अब प्रारंभ होने वाली है नृप की करुण कहानी जी॥

संध्या होते होते उन्होंने किया नगर प्रवेश।
द्वारपाल ने पूछा कौन हो कहाँ आपका देश जी॥

भाई! हम तो पथिक हैं तीनों चलते चलते आये।
खाली हाथ हमारे हैं ये काम कोई मिल जाये जी॥

बहुत काम काशी में भाई हो यदि करने वाला।
भला काम क्या पाये वह जो, जी है चुराने वाला जी॥

अभी तो अन्दर जा नगरी में करें आप विश्राम।
कल प्रातः मिल जायेगा जो भी चाहोगे काम जी॥

धन्यवाद देकर के वहाँ से बढ़ गया आगे भूप।
लगन एक ही है बस मन मे भरना ऋण का कूप जी॥

अपरिचित है पथ यह रानी कहाँ किधर हम जाये।
ऐसी बात मत कहना मुख से परिचय कोई पाये जी॥

रहे आप निश्चिंत स्वामी! नहीं आये कोई शिकायत।
ध्यान रखूंगी पूरा पूरा मैं तो इसके बाबत जी॥

आज कहीं भी रह जाये कल लेंगे ढूंढ ठिकाना।
भूखा है रोहित पर इसने समय आज पहचाना जी॥

तात! तनिक भी चिंता मेरी आप नहीं मन लाये।
कहकर ऐसा बार बार बल मेरा नही घटाये जी॥

चत्वर एक दिया दिखलाई तरु की फैली छाया।
नृपति ने संकेत किया तारा ने कदम बढ़ाया जी॥

तीनो चढ चत्वर पर वे अब करने लगे आराम।
केवल रात बितानी आज तो और नहीं कुछ काम जी॥

आने जाने वाले उनको देख रहे ये कौन?
रहने वाले कहाँ के है ये बैठे यहाँ क्यों मौन जी?

सुन्दर कैसा रूप निराला, चमक रहा दीदार।
कही स्वर्ग से उतर न आया देवों का परिवार जी॥

खेल रहे थे बच्चे वहाँ जो देख रोहित कुमार।
उस चत्वर के चारों ओर वे घूमे बारम्बार जी॥

कर संकेत रोहित को बुलाये आओ खेलें खेल।
खेल खेल मे ही हो जाता उन बच्चों से मेल जी॥

नाम तुम्हारा क्या है भाई पहले हमे बताये।
ताकि वही नाम ले कर हम तुमको पास बुलाये जी॥

तात मात रोहित कह करके देते हैं आवाज।
तुम सब से मिल खुशी हुई है मुझे बंधुओ! आज जी॥

अरुण गया अस्ताचल को चहुँ और घिरा अंधियारा।
थका हुआ है रोहित मेरा विचार करती तारा जी॥

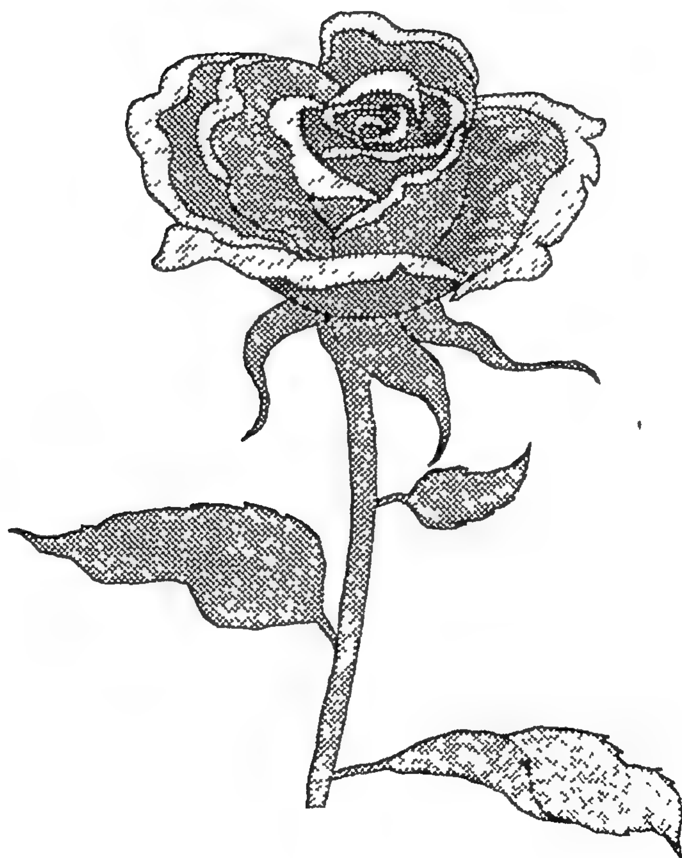
भाग दौड़ मे थक जायेगा लाल अधिक यह मेरा।
अतः बोली आओ बेटे! अब छाया घना अंधेरा जी॥

सुन आवाज मात की सत्वर रोहित निकट है आया।
सिर पर हाथ फेर तारा ने सुत को वहाँ सुलाया जी॥

खुद भी सो गई, थकी हुई थी, अतः नींद है आई।
लेकिन महीपति ने बैठे रह रजनी वह बिताई जी॥

खुली नींद रानी की सुनकर अरुण शिखा[1] आवाज।
उठ कर देखा उसने बैठे ध्यान मग्न महाराज जी॥

वह भी बैठी ईश भजन में यह तो नित का काम।
और काम सब बाद में पहले लेना प्रभु का नाम जी॥



१ – मुर्गा



षष्ठ किरण

पुरुषार्थ महान्

समय सदा नहिं एक सा, देखो दृष्टि पसार।
पतझड़ जीवन में कभी, कभी बसंत बहार॥

देख रहे संसार में, कभी ग्रीष्म की धूप।
कभी व्योम बादल तने, रिमझिम कभी अनूप॥

प्रभा प्रभाकर की कभी, कभी तिमिर हर ओर।
कभी मंद मारुत बहे, कभी प्रभंजन शोर॥

पता नहीं कब होत क्या, इस जीवन का हाल।
जल जग ने जीवन कहा, वही बुलाये काल॥

कभी हृदय गमगीन है, कभी खुशी के गीत।
कभी जीत में हार है, कभी हार में जीत॥

कभी सुबह की गोद में, बैठी मिलती सांझ।
कभी रंक राजा बने, कभी उतरते ताज॥

खेल समय के हैं सभी, समय समय का फेर।
मनुज समय पहचान रे जो चाहे निज खैर॥

पूर्ववत्

किरण माली के आते नृप ने तुरत किया प्रस्थान।
ढूढें घूम घूम मिल जाए कोई उत्तम स्थान जी॥

मिली एक छोटी सी कुटिया ले ली उसे किराये।
दोनों को ठहरा उसमें नृप काम ढूंढने जाये जी॥

एक स्थान पर भव्य भवन है बनता दिया दिखाई।
राजा ने जा निज विवशता भवनपति को बताई जी॥

गृहपति ने दया दिखाते नृप को काम बताया।
खुशी खुशी नृप ने करने को अपना कदम बढ़ाया जी॥

उधर सोचती तारा मन में मैं भी काम पर जाऊं।
स्वामी श्रम करने को गए हैं क्यों नहीं हाथ बटाऊं जी॥

पेट तो अपना भरना ही है फिर क्यों श्रम में शर्म।
शर्म मनुज को होनी चाहिए करते कुत्सित कर्म जी॥

पता नहीं कब तक लौटेंगे पहली बार गये हैं।
काम मिले या नहीं मिले वे यहाँ पर नये नये हैं जी॥

भूखा कब तक रहेगा मेरा लाल रोहित यह प्यारा।
ढूंढू मैं भी काम कोई यह सोचे मन में तारा जी॥

रोहित के साथ लिए महारानी एक भवन में आई।
दी आवाज काम कोई हो दो मुझको बतलाई जी॥

लगे देखने घर वाले भी कौन यह सुन्दर नारी।
करना चाहे काम यह क्यों क्या इसकी लाचारी जी॥

पूछा प्रेम से गृहपति ने तुम कौन कहाँ से आई।
हमसे क्या सहयोग चाहिए, दो निःशंक बताई जी॥

तारा बोली यही है परिचय भाग्य यहाँ पर लाया।
काम चाहिए मुझे तो कोई हँस उसने बतलाया जी॥

अरे बहन! क्या काम करोगी जो चाहो ले जाओ।
हमें भी अपना ही मानो तुम व्यर्थ न कष्ट उठाओ जी॥

यह तो दया आपकी है जो ऐसा स्नेह जताया।
शिष्ट, सुष्ठु व्यवहार आपका अपनापन दरसाया जी॥

लेकिन श्रम बिन नहीं चाहिए दो मुझको कोई काम।
चौका, बरतन, धोना, पीसना जानू कार्य तमाम जी॥

अरे बंधुओ! शिक्षा लो तुम अवध राज्य की रानी।
बिन श्रम किए नहीं कुछ खाऊं कैसी मन में ठानी जी॥

मत चुराओ श्रम से जी तुम श्रम है औषध सच्ची।
श्रम करने वालों की काया रहे सदा ही अच्छी जी॥

देखा जब ऐसे नहीं लेगी तो फिर काम बताया।
श्रम कर तारा ने उस घर से सूखा भोजन पाया जी॥

ले सामग्री झट तारा चल निज कुटिया में आई।
भोजन लगी बनाने वह तो खुशी हृदय में छाई जी॥

त्वरित बनाकर भोजन वह तो बोली बेटे! आओ।
मेहनत से जो मिला आज सहर्ष उसे अपनाओ जी॥

आप भी मेरे साथ आओ माँ! मैं न अकेला खाऊँ।
एकाकी भोजन करने में आनन्द नहीं मैं पाऊँ जी॥

प्यारे सुत! मत जिद्द करो तुम समय अभी कुछ ओर।
ऐसी बातें करना बाद में हो जाओ किशोर जी॥

समझा कर मुश्किल से उसने भोजन उसे खिलाया।
आहार लेते ही रोहित के तन तेज नया हैं आया जी॥

करे प्रतीक्षा नृप की रानी कब स्वामी घर आये।
भूखे पेट भटकते होंगे कौन बुलाने जाये जी॥
अर्ध दिवस की लूं मजदूरी इधर सोचे महाराज।
क्षुधा से व्याकुल हो रहा होगा मेरा रोहित आज जी॥

बता स्थिति अपनी मालिक से जो कुछ नृप ने पाया।
उससे भोज्य सामग्री ले निज कुटिया में नृप आया जी॥

जो कुछ लाया राजा ने वह रखी सामग्री सारी।
बोला फिर भोजन की रानी! करो शीघ्र तैयारी जी॥

भोजन तो तैयार है स्वामी! कर रही हूँ इंतजार।
भूख जोर से लग रही होगी समय करें न बेकार जी॥

अरे कहाँ से आ गया भोजन सामग्री अब लाया।
क्या किसी ने भिजवा भोजन दयाभाव दरसाया जी॥

न तो किसी ने भोजन भेजा नहीं मांग मैं लाई।
श्रम कर सकती हूँ मैं भी यह मन में भावना आई जी॥

किया काम प्रतिवेशी[1] के घर जो भी मुझे बताया।
बदले में भोजन का वहाँ से सब सामान है पाया जी॥

अगर आप राजा होकर भी कर सकते श्रम स्वामी।
तो क्या नाथ! आपकी मैं नहीं बन सकती अनुगामी जी॥

१ – पड़ोसी

मैं भी आपकी अर्द्ध अंगिनी अलग नहीं रह पाऊँ।
श्रम कर मैं भी स्वामी! अपनी सुप्त शक्ति जगाऊं जी॥

मम मेहनत से अपनी गृहस्थी स्वामी यहाँ चलाये।
वेतन जो भी मिले आपको ऋण हेतु उसे बचायें जी॥

तारा तुमको पाकर जीवन धन्य हुआ है मेरा।
सच पूछो तो विश्वामित्र संग ऋणी हुआ मैं तेरा जी॥

संबल तेरा बहुत बड़ा है सर्व कष्ट अब झेलूं।
घटाएं उमड़े चाहे जितनी उनको दूर धकेलूं जी॥

स्नेह सहित भोजन भूपति को त्वरित तारा ने कराया।
शीतल जल जो भर लाई थी समनुहार पिलाया जी॥

कभी सेवक भी जिनके घृत, पय से चुल्लू थे करते।
आज वे ही खा रूखा सूखा उदर पूर्ति हैं करते जी॥

भोजन से निवृत्त हो नृपति पुनः काम पर जाये।
बडी लगन से मेहनत करके लौट शाम को आये जी॥

समय समय की बात एक दिन जो था नृपति महान्
वही श्रमिक बन श्रम करते पर रहा न कोई पहचान जी॥

जिन पॉवों में पदत्राण भी पहनाते थे अन्य।
एक इशारा पाकर जिनका निज को मानते धन्य जी॥

वही भूप मजदूरी करने श्रमिक रूप में जाये।
सत्य धर्म के लिए काशी में कष्ट अनेक उठाये जी॥

जिस रानी ने उठ हाथों से पिया नहीं था पानी।
वह औरों के पात्र मांजती अद्भुत कर्म कहानी जी॥

रोहित भी माता के काम में अपना हाथ बटाये।
मुझको यह करने दो माता बीच बीच में आये जी॥

अपने लिए तो सब ही सहते जग में कष्ट अनेक।
लेकिन धर्म हिताय सहे जो लाखों में वह एक जी॥

समय जा रहा अपने क्रम से हिलमिल करते काम।
समय तो चलता ही रहता है बिना लिए विश्राम जी॥

निष्ठा, स्फूर्ति, लगन देखकर श्रमिक अचंभित सारे।
देखे सैकड़ों पर ऐसा नहीं मन में सभी विचारे जी॥

वेष भले ही बना रहा है, है कोई दीन अनाथ।
लेकिन इसका कैसा कोमल, कांतिमान है गात जी॥

जानु प्रलम्ब परिपुष्ट भुजाएं श्यामल कुंचित केश।
स्वातिसुत[1] सम दंत चमकते नहीं अहं लवकेश जी॥

लम्बे कर्ण, कपोल भरे हुए नेत्र स्नेह बरसाते।
ओष्ठ अरुण नैसर्गिक आभा प्रतिपल ही प्रगटाते जी॥

विशाल वक्ष व भव्य नासिका मृदुल पाणितल प्यारे।
खिले फूल सा चेहरा सुन्दर हावभाव सुखकारे जी॥

इच्छा होती पृच्छा इनसे करें कहाँ से आये।
जन्म स्थान, नाम आदि का परिचय इनसे पाये जी॥

लेकिन साहस नहीं कर पाते इच्छा कर रह जाते।
मन में उठते भाव अधर से आगे नहीं बढ़ पाते जी॥

रहके मौन, श्रम कर महीपति तो लौट शाम को आये।
लूखा सूखा जो भी मिलता बैठ प्रेम से खाये जी॥

१ – मोती

राज्य वैभव की याद तनिक भी नृप को नहीं सताये।
लेकिन ऋण जो चढ़ा हुआ है चिंतित उन्हें बनाये जी॥

और नहीं दुख किसी बात का केवल चिन्ता एक।
ऋण ऋषि का चुके तभी रह पाये सत्य की टेक जी॥

दिन पर तो दिन निकल रहे हैं क्या मैं करुं उपाय।
इस वेतन से मेरी समस्या हल न कभी हो पाय जी॥

कैसे रानी! समय के रहते पूर्ण होवे संकल्प।
कुछ भी युक्ति सूझ रही ना समय बहुत ही अल्प जी॥

चिन्ता करने से तो स्वामी! सुलझे नहीं समस्या।
सुलझे तो लो बैठूं आप संग करके अभी तपस्या जी॥

उलझन का नहीं समाधान यह बन बैठे उदास।
चिन्ता से तो बुद्धि, बल का नाथ! होत है ह्रास जी॥

अशन, पान, आवास समस्या जैसे हुई है दूर।
समय आने पर यह चिंता भी स्वामी! होगी चूर जी॥

सच्चे मन से चाह रहे हम ऋषि का कर्ज चुकाना।
नीयत साफ दिन साफ उसी के नीति का फरमाना जी॥

कुछ पल स्वस्थ हुआ नृप मन सुन महारानी के वैण।
दिन तो निकले जैसे तैसे मुश्किल बीते रैण जी॥

रानी को भी कम नहीं चिंता लेकिन रखे दबाये।
कही देख मुझको चिंतित दुख उनका नहीं बढ़ जाये जी॥

कुछ ही दिन जब शेष रहे तो हरिश्चन्द्र अकुलाये।
इस वेतन से तो ऋषि का ऋण कभी नही चुक पाये जी॥

दोनों समय भर सके पेट हम इतनी सी है आय।
रोगाक्रान्त हो तन यदि कुछ दिन वह भी कठिन हो जाय जी।।

अगर रेहन रख मुझको कोई दे दे मुद्रा हजार।
रहना पड़े दास आजीवन तो भी है स्वीकार जी॥

जो इस चिन्ताम्बुधि में डूबे मुझको लेगा उबार।
अपने उस उपकारी का मैं मानूंगा आभार जी॥

आज काम पर नहीं जाकर मैं ढूंढू वह दयालु।
ऋण से मुक्त मुझे करवा दे बन कर जो कृपालु जी॥

सश्रद्धा ले नाम प्रभु का निकल पड़ा है भूप॥
निद्रा चैन की तब आयेगी भरेगा ऋण का कूप जी॥

रहे श्रेष्ठी जन जिधर नगर में हर्षित हो नृप जाये।
भव्य भवन के द्वारपाल को भूप भाव दरसाये जी॥

मुझे श्रेष्ठी से मिलना है संदेश उन्हें पहुँचा दो।
द्वारपाल हँस बोला बात क्या मुझको ही बतलादो जी॥

प्यास आम की बुझे आम से बुझे न इमली खाकर।
मुझे सेठ से ही मिलना है करुं तुम्हें क्या कहकर जी॥

द्वारपाल ने अन्दर आ श्रेष्ठी को बात बताई।
मिलना चाहे कोई आप से देता दुखी दिखाई जी॥

कौन कहाँ से आया है क्या मुझसे उसको काम।
लेने देते नहीं एक पल ये मुझको आराम जी॥

बाहर आ धनपति ने देखा है कोई मजदूर।
काम चाहे तो दे दो बोला होके गर्व में चूर जी॥

कह इतना बिन सुने बात वह लौट श्रेष्ठी तो जाये।
भला गरीबों से बातें कर महिमा कौन घटाये जी॥

दीन अनाथों की न उपेक्षा करो रे गर्वी धनिको!
परिस्थिति के मारे हैं ये गले लगाओ इनको जी॥

पता नहीं किस दिन यह लक्ष्मी जाये तुमसे रूठ।
हरा भरा तरुवर सघन जो कब बन जाये ठूंठ जी॥

धन के बल पर किसी भी नर को अच्छा नहीं इतराना।
यह लक्ष्मी तो चंचल होती भूल कभी नहीं जाना जी॥

इन श्रमिकों ने अपने श्रम से श्रेष्ठी तुम्हें बनाया।
नीर पिलाया अगर इन्हें बदले में स्वेद बहाया जी॥

मत शोषण तुम करो रे इनका ये सहयोगी तुम्हारे।
ये न होते तो बन पाती क्या महल और मीनारें जी॥

बहुत दुःख हुआ भूपति को यह देख श्रेष्ठी व्यवहार।
खरे खोटे की पहचान नहीं है कैसा यह संसार जी॥

निकल वहाँ से नव आशा ले नृप चला दूसरी हाट।
शायद काम बने यहाँ मेरा सोचा देखकर ठाट जी॥

उसी तरह मिलने मालिक से महीपति भाव जताये।
लेकिन दीनवेश लख श्रेष्ठी कहे और कहीं जाये जी॥

भाई! तुम्हारे योग्य काम कुछ नहीं है मेरे पास।
सुनकर श्रेष्ठी का यह उत्तर भूप हुआ निराश जी॥

फिर भी हिम्मत करके राजा गया तीसरी हाट।
श्रेष्ठी पान दबाये मुख में बैठा रजत के पाट जी॥

काम करे अनुचर, मुनीम जी खाते रहे मिलाय।
हरिश्चन्द्र ने हाथ जोड़ विवशता दी दरसाय जी॥

श्रेष्ठी बोला-काम बहुत पर मैं नहीं तुमको जानूं।
ले आओ पहचान कोई निज तभी बात मैं मानूं जी॥

मैं परदेशी कोई न मेरा जो मुझको पहचाने।
तो फिर काम नहीं मिल पाये बात न अपनी ताने जी॥

एक एक कर कई हाटों पर हरिश्चन्द्र नृप जाये।
स्वार्थ भरा संसार यह भाई! कोई न दर्द बटाये जी॥

मध्याह्न हो गया भ्रमते भूप को फली न अब तक आशा।
सूरज सिर पर चढा देखकर छाने लगी निराशा जी॥

तथापि मन को मार चला नृप पहुँचा एक दुकान।
लगन एक बस ऋण राशि का करना है भुगतान जी॥

वही बात दोहराई नृप ने मिलना है मालिक से।
नौका है मझधार मेरी तो लगे पार नाविक से जी॥

दीनवेश में देख दिव्यता दीप्त भाल की उस पल।
चकित हुआ वह सेठ कौन यह क्या इसकी है मुश्किल जी॥

श्रेष्ठी बोला-बोलो भाई! क्या है मुझसे आशा।
हरिश्चन्द्र ने कहा कूए के पास आता है प्यासा जी॥

कर्ज चुकाना चढा हुआ जो दिखती न कोई राह।
आप कृपा से काम बने यह और न कोई चाह जी॥

सभी काम करना मैं जानूं जो भी आप बताये।
कर दया रख रेहन मुझको ऋण से मुक्ति दिलाये जी॥

जो भी वेतन तय होगा मैं उसमें करुंगा काम।
अग्रिम राशि पाऊं आप से देऊं पुनः तमाम जी॥

राशि जब तक चूक न जाये बंधक मुझको मानो।
भाग्य चक्र में उलझे मेरी मजबूरी पहचानो जी॥

कितना कर्ज चढ़ा है तुम पर पहले मुझे बताओ।
देने की गुंजाइश हो तो राशि वह तुम पाओ जी॥

नपे तुले शब्दो में नृप ने अपनी बात बताई।
सहस मुद्राएं सुन श्रेष्ठी ने कहा नहीं है भाई जी॥

एक हजार किसे कहतें हैं चुका नहीं तुम पाओ।
क्षमा करो मुझको तो भाई! और किसी घर जाओ जी॥

इतनी मुद्राएं तो तुम जीवन भर दे नहीं पाओ।
मात्र सूद में हो अपनी तो आयु पूर्ण गंवाओ जी॥

अहो श्रेष्ठी! मैं लेकर आशा द्वार तुम्हारे आया।
फलीभूत नहीं हुई कामना यही सोच पछताया जी॥

कुछ भी हो अपरिचित पर मैं कैसे करुं विश्वास।
नृप बोला-दो परिचित मेरे यह धरती, आकाश जी॥

अहो श्रेष्ठी! विश्वास के बल पर चल रही दुनिया सारी।
नहीं जाऊंगा छोड़ आपको मानो बात हमारी जी॥

जाओ भाई जाओ तुम मत मुझको मूर्ख बनाओ।
ठग विद्या नहीं चले तुम्हारी आगे कदम बढ़ाओ जी॥

तिरस्कार यों पा सर्वत्र लगी हृदय को चोट।
हो हताश अब हरिश्चन्द्र तो आये घर को लौट जी॥

उतरा चेहरा देख भूप का भांप गई मन तारा।
बोली-स्वामी! मिला नहीं क्या अब तक कोई किनारा जी॥

महारानी मुझको तो चारा देता नहीं दिखाई।
प्रण पूरा कैसे होगा मम चिन्ता गहरी छाई जी॥

दो दिन ही अब शेष रहे हैं दिखता नहीं उपाय।
आंखों में छा रही तमिस्रा मन मेरा घबराये जी॥

अवधिपूर्ण होते ही ऋषि तो आयेंगे मुझ पास।
क्या दूंगा मैं इसी सोच से रुके मेरी तो सांस जी॥

दशा देख स्वामी की तारा मन में करे विचार।
समय परीक्षा आज ले रहा कौन सुने पुकार जी॥

आँखे पौंछते हुए वह बोली स्वामी! मत घबराओ।
रक्षा करेगा धर्म हमारी विश्वास हृदय में जाओ जी॥

अगर सहज बन जाये काम फिर क्या होगी परीक्षा।
रखते हुये धैर्य हमको तो करनी होगी प्रतीक्षा जी ॥

तारा! तुम कहती हो जो कुछ बात वह मैं जानू।
धर्म सहायक है संकट में सत्य इसे भी मानूं जी॥

लेकिन कुछ भी रूपरेखा नहीं देती मुझे दिखाई।
कैसे धर्म रहेगा मेरा चिन्ता रही सताई जी॥

क्या कर समझाऊं मैं मन को कैसे काम बनेगा।
मन मेरा उद्विग्न, चैन नहीं, कैसे धर्म रहेगा जी॥

मात्र सांत्वना से क्या रानी चिन्ता होती दूर।
उदर तो भोजन से ही भरता समय बड़ा है क्रूर जी॥

यद्यपि तारा ऊपर से तो नृप को धैर्य दिलाये।
लेकिन अन्तर उसका भी ऋण चिन्ता से घबराये जी॥

चिन्ता ही चिन्ता में अवधि पूर्ण होने को आई।
हरिश्चन्द्र सह महारानी भी मन ही मन अकुलाई जी॥

एक एक कर निकल गये दिन रहा एक ही शेष।
तारा बोली-करूँ वही मैं जो दे आप आदेश जी॥

देखे बिकते मैंने कल काशी में कई गुलाम।
हो आज्ञा तो मै भी होऊं नाथ! वहीं नीलाम जी॥

हरिश्चन्द्र कुछ उत्तर दे इतने में ऋषि वे आये।
अरे कहाँ है हरिश्चन्द्र वह, जोर से वे चिल्लाये जी॥

सुन ऋषि की आवाज तारा की धड़कन हो गई तेज।
हरिश्चन्द्र का वदन चन्द्र भी हो गया है निस्तेज जी॥

कैसे मुँह ऋषि को दिखलाऊं राशि जुटा न पाया।
चिन्ता के कारण राजा को गहरा पसीना आया जी॥

उत्तर नही पाकर अन्दर से विश्वामित्र जी चीखे।
रोष में भर वे लगे सुनाने वचन भूप को तीखे जी॥

अरे धूर्त! कहाँ छिप बैठा है क्यों न सामने आता।
शेष एक दिन रहा है कल का क्यों नहीं वचन निभाता जी॥

तूने जो अवधि चाही थी वह भी हो गई पूरी।
अब तक पता नही राशि का कल में क्या है दूरी जी॥

नृप को वहीं रोक कर रानी कुटी से बाहर आई।
नमस्कार कर विश्वामित्र को अपनी बात सुनाई जी॥

ऋषिवर! हम पर जो भी ऋण है सर्व चुकाना चाहें।
प्रयत्न तो परिपूर्ण परन्तु दिखती नहीं है राहें जी॥

अतः प्रार्थना इतनी आप से अवधि और बढ़ाये।
ताकि सहस्र स्वर्ण मुद्राएं संचित हम कर पाये जी॥

यह सुनते ही आग बबूला विश्वामित्र हो जाये।
कहाँ छिपा है हरिश्चन्द्र वह बाहर क्यों नहीं आये जी॥

अच्छा मूर्ख बनाया मुझको खूब बघार के शेखी।
छोड़ अवध यहाँ आ बैठा नहीं ऐसी धूर्तता देखी जी॥

ऋषिवर! ऐसा नहीं बोलिए, तजिए अपना क्रोध।
ऋण चुकाना हमें आपका पूरा इसका बोध जी॥

लेकिन अभी नहीं अवसर कि राशि हम दे पाये।
अतः निवेदन अवधि में कुछ वृद्धि आप कराये जी॥

अरे नहीं दे सकता तो क्यों हठ नहीं अपनी छोड़े।
क्यों न अहं तज मांग माफी वह मुझसे नाता जोड़े जी॥

बात अहं की नहीं है स्वामी, कहा वह हम देंगे।
दे के दक्षिणा मुनिवर हम आशीष आपका लेंगे जी॥

अरे व्यर्थ ही बोले जा रही समय मेरा तो जाये।
मुझे चाहिये मेरी दक्षिणा और न बात सुनाये जी॥

या तो राशि दे दो मेरी छोड़ व्यर्थ तकरार।
या फिर क्षमा मांगलो सत्वर करके भूल स्वीकार जी॥

भूल अगर होती स्वामी! मैं करवाती कबूल।
लेकिन भूल नहीं फिर कैसे कहूँ फूल को शूल जी॥

भला भूल को भूल मान लेने मे कहाँ एतराज।
मगर बिना गलती के कैसे बाध्य करुं महाराज जी॥

आखिर हिम्मत कर राजा भी कुटी से बाहर आया।
विश्वामित्र के चरणों में आ अपना शीष झुकाया जी॥

दीन दयालु महा कृपालु भाग्य मेरे तो जागे।
चरण छूए हैं विश्वामित्र के बढ़कर नृप ने आगे जी॥
अरे भूप रहने दे नाटक सुनले खोल कर कान।
या तो दे दे राशि मेरी या फिर भूल ले मान जी॥

कहाँ मना करता मै स्वामी! देना दिल से चाहूं।
लेकिन अभी समर्थ नहीं मैं स्पष्ट बात बतलाऊं जी॥

बुद्धि काम न कर रही मेरी आप ही युक्ति बताये।
करुं काम क्या जिस से वांछित राशि मुझे मिल जाये जी॥

ऋषि बोले कहाँ बुद्धि तेरे में मार्ग तुम्हें जो सुझाये।
पूंछ पकड़ के धर्म की बैठा बात कैसे बन पाये जी॥

मैं तो कहूँ यही तुमसे कि करले भूल स्वीकार।
झंझट सारा मिटे पलक में करो नहीं इनकार जी॥

नहीं मानो तो कहा रानी ने उसको ही अपनालो।
बिक काशी में ऋण रहित हो जीवन सफल बनालो जी॥

अच्छी युक्ति बताई स्वामी! कल होऊं नीलाम।
राशि दक्षिणा दे दूंगा कल होते शाम जी॥



दोहे

सर्व राशि मुझको मिले, हो ना इसमें देर।
राजन्! तब हित में यही, वरना नहिं है खैर॥

पाँव पटकते चल दिए, ऋषिवर विश्वामित्र।
हरिश्चन्द्र तारामती, खड़े रहे बन चित्र॥

हाथ पकड़ रोहित कहे, मौन खड़े क्यों तात?
ऋषिवर फिर क्या चाहते, हुई नई क्या बात?

खास बात बेटे! नहीं, होना ऋण से मुक्त।
दास बनूं कल बिक यहाँ, बात यही उपयुक्त॥

चिन्ता है रानी मुझे तेरा अब क्या होय।
शूल मुनि ने आज तो दिये हैं पथ में बोय॥

स्वामी! चिन्ता ना करें चले धर्म की राह।
दुख की हम फिर क्यों करें , नाथ! यहाँ परवाह॥





सप्तम किरण

दुख विलाप

नींद चुराकर ले गये, ऋषि वे विश्वामित्र।
सुनिये क्या बनता नया, हरिश्चन्द्र का चित्र॥

पूर्ववत्

रजनी ने तारों की चुनरी अपनी अब, समेटी।
देख यह झट उषा सुन्दरी उठ क्षितिज पर बैठी जी॥
राकापति का दिव्य तेज भी नील व्योम में खोया।
दिनकर ने आँखें खोली जो ओढ निशा को सोया जी॥
उतर धरा पर वह आये पहले ही रानी जागी।
हरिश्चन्द्र ने भी उठ करके शय्या अपनी त्यागी जी॥
ध्यान मग्न होकर के नृप ने स्मरण प्रभु का कीना।
ईश-संस्तुति बिना रे मानव! जीना भी कोई जीना जी॥
प्रभु नाम की प्रभा हृदय मे भरती नव आलोक।
जन्म मरण के महाचक्र को देती वह तो रोक जी॥
अंशुमाली के आने पर तमस ठहर नहीं पाये।
प्रभु भजन से जन्म जन्म के पाप नष्ट हो जाये जी॥
निस्काम भाव से जो भी प्राणी ध्यान प्रभु का धरता।
अनल यह है कर्म का ईन्धन जिससे नित ही जलता जी॥

नयन मूंद तारा भी करने बैठी प्रभु का जाप।
चन्दा, चन्दन से बढ़ शीतल, जाप हरे तव ताप जी॥
'नमो नमो अरिहंताणं' कह उठे रानी और भूप।
झलक रहा है तेज भाल पर अद्भुत दिव्य अनूप जी॥

नृप सोचे बिक उत्रऋण होना है ऋषि के ऋण से आज,
गूंज रही उनके अन्तर में यही एक आवाज जी॥

रानी भी मन सोच रही है क्यों नहीं मैं बिक जाऊं।
नारी धर्म निभा अपना मैं पति का मान बढ़ाऊं जी॥

नित्य कर्म से निवृत्त हो भोजन तारा ने बनाया।
बैठ प्रेम से एक साथ तीनों ने भोजन पाया जी॥

जी भर करके देखा परस्पर नगर मध्य फिर आये।
दास दासी बिकते है जहाँ पर पहुंचे बिन शरमाये जी॥

इधर महर्षि बिना विलम्ब के उसी स्थान पर आये।
खड़ा देख बिकने हित नृप को मन ही मन पछताये जी॥

राज्य त्याग इस हरिश्चन्द्र ने जीवन धन्य बनाया।
गजब धर्म निष्ठा इसकी जो बिकने को भी आया जी॥

झूठे अहं के कारण मैंने बहुत खोया है अपना।
अगर आत्म संयम रख लेता पड़ता नहीं यों तपना जी॥

पर अब क्या हो सकता है चिन्तन में नहीं है सार।
कुछ भी हो इसके आगे तो मानूं नहीं मैं हार जी॥

नेत्र चार होते ही नृप ने ऋषि को शीष नवाया।
फिर बोला कोई मुझे खरीदो मैं बिकने को आया जी॥

उमड़ी भीड़ भूप को लखने दिव्य पुरुष यह कौन।
जो भी आया रुका वहाँ वह गति हो गई मौन जी॥

खुसुर फुसुर तब करने लगे हैं विस्मित होकर सारे।
कैसे कैसे सुन्दर नर मजबूर हो बिके बेचारे जी॥

कहा एक ने कितना लोगे पहले यह बताओ।
अगर उचित होगा तो राशि वह हम से तुम पाओ जी॥

मुझे न वैसे जरुरत धन की पर ऋण का है भार।
अतः मुझे क्रय करके भाई करो कोई उपकार जी॥

बढ़कर आगे पुनः पूछा कि कितना तुम्हारा मोल।
अपना भी सामर्थ्य देखले शीघ्र हमें दो बोल जी॥

सहस मुद्रायें दे ऋषिवर को साथ मुझे ले जाए।
हरिश्चन्द्र उस प्रश्नकर्त्ता को अपनी बात बताए जी॥

देखा सबने ऋषि तरफ चुपचाप खड़े जो दूर।
अरे ऋषि को धन से काम क्या लगे निरखने नूर जी॥

ऋषियों का तो धन होता है त्याग, तपस्या, समता।
ब्रह्मचर्य, अकिंचनता फिर क्यों धन से यह ममता जी॥

खैर हमें क्या लेना देना इनकी ये ही जाने।
रंग बिरंगी है यह दुनिया कौन किसे पहचाने जी॥

कहने लगे भूप से वे तो कीमत यह है ज्यादा।
हमें तो लगता नहीं मिलेगा तुमको इसका आधा जी॥

अरे भाई! विवशता मेरी समझ मुझे क्रय करलो।
आजीवन मैं दास रहूंगा दुःख मेरा तुम हरलो जी॥

इतने में गई दृष्टि एक की उस पल महारानी पर।
मन चला वह बोल उठा मुस्कान वदन पर लाकर जी॥

अगर यह गौरांगी बिकने इसके बदले आये।
हर्षित हो हर कोई इसको अपने घर ले जाये जी॥

सुनते ही यह तत्क्षण तारा भूप सन्निकट आई।
चलो लगाओ बोली मेरी मैं बिकने को आई जी॥

देख तेजस्वी रूप तारा का करे लोग यों बात।
लगता यह ललना भी शायद इस नर के ही साथ जी॥

ऐसी क्या विपदा इन पर जो होते ये नीलाम।
और ऋषि भी कैसा लोभी धन से रखता काम जी॥

देख तारा को तत्पर बिकने भूप कहे क्यों आई।
मेरे सामने बिको यहां तुम बात न मुझको भाई जी॥

मैं भी आपकी अर्ध अंगिनी बने अगर यह काम।
जीवन मानूं धन्य मैं अपना होने दो नाथ! नीलाम जी॥

नहीं नहीं यह कभी न होगा देखूं तुम्हे मैं बिकते।
उस क्षण नृप की दशा हुई जो रुके कलम भी लिखते जी॥

अभी समय नहीं स्वामी बहस का भूप बात पर आये।
कोई भी हम बिके यहाँ बस ऋण ऋषि का चुक जाये जी॥

सोच न पाया भूपति कि अब क्या मैं कदम उठाऊं।
हे प्रभु! मुझे खरीदे कोई बिक पहले मैं जाऊं जी॥

नर के रहते नारी बिके है नरत्व को धिक्कार।
ऐसा जीवन तो जीना ही है जग में बेकार जी॥

चिंतन झूले झूल रहा नृप इधर सोचती तारा।
कुछ भी हो पर आज ऋषि का कर्ज चुकाना सारा जी॥

मैं बिकने को खड़ी हूँ कोई दे दो मुद्रा हजार।
सिर पर जो है कर्ज हमारे उतरे वह तो भार जी॥

सहस मुद्रा तो बहुत अधिक है कोई नहीं लगाये।
ले जा कर क्या करें तुम्हें घर एक व्यक्ति दरसाये जी॥

क्या आशा हम रखें काम की हो कोमलांगी नारी।
क्रय कर के तुमको हम सब क्या सेवा करें तुम्हारी जी॥

अरे भाइयो! मत सोचो मैं काम नहीं कर पाऊं।
क्रय कर के तो देखो पहले फिर सेवा बतलाऊं जी॥

खड़ा खड़ा वहाँ विप्र एक जो सुन रहा बातें सारी।
लगा सोचने उच्च्य वंश की दिखती यह कोई नारी जी॥

लक्षण तन के बता रहे हैं, है सुशीला नारी।
मुख पर झलक रही है सौम्यता कैसी यह मनहारी जी॥

लेकिन संकट दिखता भारी तभी तो बिकने आई।
अन्तर की मानवता बोली जीवन सार भलाई जी॥

पाँच सौ मोहरें तो देने की मैं रखता हूँ क्षमता।
अगर देने से काम बने तो छोड़ दूं इनकी ममता जी॥

शूल साफ कर पाऊं किसी के बिछा सकूं या फूल।
जीवन मानूं सार्थक अपना दया धर्म का मूल जी॥

यही सोच कर वृद्ध विप्र वह पास तारा के आया।
सोचा था दिल में जो उसने आ उसको बताया जी॥

बहिन! पाँच सौ मुद्राएं ही मैं तुमको दे पाऊं।
अगर होओ इसमें सहमत तो खड़े खड़े गिन जाऊं जी॥

सोचे तारा करूं क्या अब मैं राशि यह अधूरी।
शेष मुद्राएं और देनी जो कहाँ से होगी पूरी जी॥

तभी ध्यान आया उसको कि क्यों खोऊं यह अवसर।
अर्धराशि पा कुछ तो शायद शांत बनेंगे ऋषिवर जी॥

और कोई नव मार्ग खोजूंगी अर्ध हेतु फिर मैं।
कुछ तो राहत पाएंगे ऋषि गर्मी जो है सिर में जी॥

यही सोचते हुए रानी ने महाराज को देखा।
उड़ी वदन की आभा सारी मुख पर चिन्ता रेखा जी॥

चिपक गई हो जिह्वा मानो महीपति बोल न पाये।
हाय! देखूं कैसे नयनों से बिक तारा यहाँ जाये जी॥

इधर ऋषि भी सोच रहे हैं रानी यदि बिक जाये।
तो शायद सारी समस्या हल मेरी हो पाये जी॥

इस महासिंहनी के रहते तो हरिश्चन्द्र महा शेर।
इसके बिकने पर सारा ही अहं हो जाये ढेर जी॥

माफी मांगता नजर आयेगा बन करके अधीर।
फिर तो नोका मेरी अपना पा लेगी झट तीर जी॥

काम न मेरा बनने देती बीच में पड़ यह रानी
शिथिल न होने देती पति को यह भारी हैरानी जी॥

अगर साथ छूटे इसका मम काम सरल हो जाये।
फिर तो अकेला मेरे सामने ठहर नहीं यह पाये जी॥

पुलक उठे ऋषि इस चिंतन से तारा से वे बोले।
बोले क्या मानो बरसाये उन्होंने वहाँ शोले जी॥

अरे देखती क्या हो उसको मिले वह तो पाऊं।
लेके दक्षिणा शीघ्र यहाँ से अपने स्थान सिधाऊं जी॥

है कायर तेरा पति तारा जाना पहली बार।
कर्ज चुकाने हेतु तुझे ही देने हुआ तैयार जी॥

औकात नहीं देने की तो क्यों बढ़ चढ़ तब वह बोला।
क्यों नहीं कहने से पहले सामर्थ्य स्वयं का तोला जी॥

जो आया सो गए बोलते शब्द शब्द था तीर।
जो बीती राजा रानी पर वे ही जानते पीर जी॥

चारा और नहीं था कोई बोली विप्र से तारा।
लाओ तात! पॉच सौ मोहरें काम बने हमारा जी॥

स्वर्ण मुद्राएं ला ब्राह्मण ने ऋषि के हाथ थमाई।
देख न पाया भूप दृश्य यह आंखें भर कर आई जी॥

ब्राह्मण बोला-चलो बेटी! अब अधिक न देर लगाओ।
करे प्रतीक्षा घर वाले मम सत्वर कदम बढ़ाओ जी॥

चरण स्वामी के छू तारा कहे जाऊं नाथ! इन साथ।
मेरी ओर से करे न चिंता पकड़ो सुत का हाथ जी॥

तड़फ उठे नृप हरिश्चन्द्र तारा को बिछुड़ते देख।
हाय! भाग्य में मेरे यह भी लिखा हुआ क्या लेख जी॥

छाने लगी भूप को मूर्च्छा तारा ने लिया संभाला।
हिम्मत स्वामी रखनी होगी, यह न बनाओ हाल जी॥

दुःख का समय नहीं यह स्वामी! धैर्य आप मन लाये।
अभी अर्ध ऋण और चुकाना इस पर ध्यान लगाये जी॥

सूरज भी ढलने वाला है चिन्ता दूर हटाये।
ऐसा न हो कि प्रण पूरा अपना नहीं हो पाये जी॥

यथा समय यदि शेष राशि नहीं आप इन्हें दे पाये।
तो अब तक की सारी तपस्या व्यर्थ हमारी जायेगी।

अतः आप तो करो व्यवस्था देना जो अवशिष्ट।
और बातें सब छोड़ दीजिए, अभी यही अभीष्ट जी॥

धर्म हमारा रक्षक होगा, मुझे पूर्ण विश्वास।
आशा फलवती भवति स्वामी तजे नहीं उल्लास जी॥

हर्ष आपको होना चाहिए, हो गया आधा काम।
यह भी नहीं होता तो होते पूरी तरह बदनाम जी॥

यह भी मानिये भाग्य हमारा बनी विप्र की दासी।
हरिजन भी यदि क्रय करता तो लाती नहीं उदासी जी॥

प्यारे सुत को स्वामी संभालो जाऊं विप्र के साथ।
योग होगा तो करुंगी दर्शन घबराये नहीं नाथ जी॥

देख रहा था रोहित अब तक खड़ा खड़ा नजारा।
छोड़ मात को जाते देखकर छूटी अश्रु धारा जी॥

आंचल पकड़ जोर से चीखा छोड़ मात! मत जाओ।
आप बिना मैं रहूं न हरगिज साथ मुझे ले जाओ जी॥

सिर पर रख हाथ तारा ने प्रिय सुत को पुचकारा।
बेटे! समय नहीं यह हट का रानी ने उच्चारा जी॥

तुझे दूर कर मन मेरा भी है बेटे! बेहाल।
पर क्या कर सकती हूँ मैं भी वक्र समय की चाल जी॥

यही कहूँ कि तात साथ रह सेवा उनकी करना।
कष्ट आये जीवन में कोई भी न उससे डरना जी॥

मुझे न कुछ भी सुनना है माँ, बोला पकड़ वह हाथ।
रखोगी वैसे रह लूंगा पर चलूंगा मैं तो साथ जी॥

तारा कभी पुत्र को देखे कभी पति की ओर।
हृदय ताल में उठी उर्मियां लगी मारने जोर जी॥

ममता माँ की रह न सकी वह बोली विप्र से रानी।
देव! साथ ले चलो इसे तुम नहीं है कुछ भी हानि जी॥

देख रहे हैं आप स्वयं ही समझे नहीं समझाये।
बच्चा है नादान अभी यह दया आप दिल लाये जी॥

बोला ब्राह्मण बेटी! यद्यपि मेरी नहीं इनकारी।
लेकिन इसे साथ रखने में झंझट बढ़ेगी भारी जी॥

झंझट क्या! इस लायक यह भी काम करेगा बच्चा।
नहीं करे इन्कार कभी यह है विनीत और सच्चा जी॥

यह क्या काम करेगा बेटी! तुम इसका काम करोगी।
पीछे पीछे दिनभर इसके भगती घर में फिरोगी जी॥

फिर दो दो का खर्चा भी तो वहन नहीं कर पाऊं।
नहीं अकेला हूँ मैं घर में स्पष्ट बात बतलाऊं जी॥

इसकी चिन्ता छोड़ो स्वामी, अनुमति आप दिराओ।
मम भोजन में से खा लेगा, नहीं आप घबराओ जी॥

सोचे ब्राह्मण एक वेतन में दो दो करेंगे काम।
भोजन भी नहीं देना लाभ यह, अधिक मिले आराम जी॥

कैसी दुनियां स्वार्थ भरी यह हित अपना ही देखे।
औरों से क्या लेना उन्हें तो अपनी रोटी सेके जी॥

बोला ब्राह्मण अच्छा तो फिर ले लो इसको साथ।
आज्ञा पाते चली तारा भी पकड़ रोहित का हाथ जी॥

मुड़ देखा भी नहीं तारा ने कहीं मोह जग जाये।
हरिश्चन्द्र चुपचाप खड़े हैं मन नहीं दुःख समाये जी॥

देख दोनों को जाते यों मन भूपति का भर आया।
टप टप लगे टपकने अश्रु देख ऋषि चिल्लाया जी॥

अरे मूर्ख! क्या देख रहा नहीं दिनपति लगा है ढलने।
आज दक्षिणा मुझे मेरी क्या नहीं पायेगी मिलने जी॥

धिक्कार तुझे शत बार पुरुष हो की नारी नीलाम।
फिर भी सिद्ध नहीं कर पाया रे मूर्ख! अपना काम जी॥

भला इसी में भूल मानले हठ दे अपनी छोड़।
कुछ भी नहीं कर पायेगा तू लगागे कितनी दौड़ जी॥

ऋषि ने सोचा शायदा घबरा भूल करे स्वीकार।
अब तो इसके नहीं रहा है कोई अहं आधार जी॥

अद्यावधि-महारानी का था इसको बड़ा सहारा।
उस महाशक्ति के बल पर ही इसने मुझे नकारा जी॥

इस अकेले में क्या हिम्मत जो मुझसे टकराये।
क्षमा मांगनी ही होगी अब सोच ऋषि हरसाये जी॥

लेकिन उल्टा हुआ यहाँ तो सुन ऋषि की फटकार।
महीपति मूर्च्छित मन-उपवन में आई नई बहार जी॥

नव आभा से दमक उठा मुख बोला तत्क्षण भूप।
बने देखते उस पल का तो छाया जो नव रूप जी॥

ऋषिवर बाध्य करे ना मुझको झूंठन्मैं कह सकता।
तन, धन, जन सब तज सकता पर धर्म नहीं तज सकता जी॥

प्रकृति का कण कण चाहे दे अपनी प्रकृति छोड़।
लेकिन धर्म से हरिश्चन्द्र नहीं मुख सकता है मोड़ जी॥

रुकिये अभी करूं व्यवस्था आधे ऋण की ऋषिवर।
महानारी उस महारानी के ही पथ पर चलकर जी॥

इतना कहकर हरिश्चन्द्र नृप आवाज वहाँ लगाये।
दशार्धशत[1] देकर दीनारें मुझे कोई ले जाये जी॥

रहे देखते सुनते सारे इतना मूल्य दे कौन?
सुन्दरता पर रीझ रहे पर क्रय के नाम पर मौन जी॥

कहता रहा भूपति लेकिन कोई न हुआ तैयार।
एक दास हित इतनी मोहरें कौन करे बेकार जी॥

खड़े देख चुपचाप सभी को नृप मन में घबराये।
कही काम बनने से पहले सूरज नहीं छिप जाये जी॥

हरिजन दूर खड़ा था अब तक देख रहा यह नजारा।
सोचे वह मैं इसे खरीदूं दिखता दुखी बेचारा जी॥

द्रवित हुआ दिल उस हरिजन का देखके ऐसा दृश्य।
सोचे क्रय तो अभी मैं करलूं लेकिन में अस्पृश्य जी॥

१ – पाच सौ

फिर भी चलो पूछ तो लूं मैं पृच्छा में क्या जाता।
चलना चाहे अगर मेरे संग मुद्रा अभी गिनाता जी॥

सकुचाते हुए पास में आ वह बोला मैं हूँ हरिजन।
ले चलने को तत्पर हूँ में अगर न कोई उलझन जी॥

मूल्य बताया अभी आपने वह भी मुझे स्वीकार।
अगर नहीं एतराज कोई तो मैं हूँ भाई तैयार जी॥

जाते जाते कही तारा ने याद आई वह बात।
खरीदता यदि हरिजन तो भी बिक जाती उस हाथ जी॥

तो फिर मुझे सोचना क्या है देर नहीं लगाऊं।
अर्धराशि देकर ऋषि को मैं ऋण से मुक्ति पाऊं जी॥

धर्म मेरा रह जाये इससे बढ़कर क्या हो हर्ष।
इधर काम बनते न देख निज ऋषि मन छाया अमर्ष जी॥

अरे दुष्ट! यह कहाँ से आ गया काम न मम बन जाये।
धड़कन होने लगी तेज है, कहीं न यह बिक जाये जी॥

बोला नृप स्वीकार मुझे मैं चलने को तैयार।
हरिजन भी मुद्रा ला बोला गिनलो अर्ध हजार जी॥

फटी रह गई आंखें ऋषि की विश्वास नहीं हो पाया।
हरिजन हाथों बिकने में भी यह तो नहीं शरमाया जी॥

तेज क्रोध आया ऋषि को उस हरिजन पर उस बार।
इस पापी ने आके बीच में दीना काम बिगार जी॥

हर आशा मेरी तो अब तक धूमिल होती रही है।
पर गृहस्थ से ऋषि हारे यह होता जग में कहीं है जी॥

झुका नहीं दूं जब तक इसको चैन नहीं मैं लूंगा।
अपने तप की शक्ति से मैं इसको झुठला दूंगा जी॥

अभी परीक्षा की घड़ियों से तुझे बहुत गुजरना।
ऐसे हार नहीं मानूंगा बात हृदय में धरना जी॥

सोचे ऋषि यों मन ही मन नृप इधर देता मुद्राएं।
विश्वामित्र का अहं इसे तो सहन नहीं कर पाये जी॥

उछल पड़े हैं हरिश्चन्द्र पर बोले वे चिल्लाते।
अरे शर्म नहीं आई तुझको हरिजन के घर जाते जी॥

इसमें बात शर्म की क्या है सब ही है, इंसान।
जाति से नहीं होते जग में कोई हीन महान् जी॥

लेकर जन्म हीन कुल में भी जीवन अगर पवित्र।
पूजनीय आदर्श वह नर बनता है सर्वत्र जी॥

उच्चवंश में जनमा लेकिन जीवन है यदि भ्रष्ट।
उच्च नहीं वह कहला सकता, कहे शास्त्र यह स्पष्ट जी॥

मुझे नहीं यह जरा सोचना बिक किसके घर जाऊं।
एक ध्यान है इस समय तो बचा धर्म मैं पाऊं जी॥

अधिक ज्ञान मत बता मुझे तू गृही और मैं संत।
व्यर्थ की हट कर बैठा है नहीं कुछ इसमें तंत जी॥

अभी नहीं कुछ भी बिगड़ा है दोष मानले अपना।
वरना जीवन भर कष्टों की आग में पड़ेगा तपना जी॥

सुत स्त्री से मिलने का भी तुम देखोगे अब सपना।
एकाकी ही बैठे बैठे नाम प्रभु का जपना जी॥

अभी जोश में होश नहीं है लेकिन फिर पछताओ।
पुनः तुम्हें कहता हूँ मानो मन हरिजन घर जाओ जी॥

क्षमा करें मुनिराज मुझे मैं बन गया इनका दास।
सेवा धर्म निभा पाऊं मैं यही लक्ष्य है खास जी॥

यथा समय ऋण मुक्त होकर के मन मेरा सरसाया।
यही खुशी है आप कृपा से धर्म मेरा रह पाया जी॥

आगे भी रह पाऊं दृढ मैं आशीर्वाद दिलाये।
संकट पर संकट आये पर फिसल नहीं मन पाये जी॥

शब्द मौन हो गए ऋषि के बोल नहीं कुछ पाये।
बोल सके क्या वह भला जो कदम ही असत् उठाये जी॥

चले स्वामी अब किधर है चलना नृप बोला कर जोड़।
हुआ रवाना हरिश्चन्द्र तो ऋषि को वहीं पे छोड़ जी॥

चला जा रहा हरिजन के सह मुड़ पीछे नहीं देखे।
क्षुद्र स्वार्थ हित धर्मवीर क्या कभी कहीं सिर टेके जी॥

सत्य कष्ट पाता है लेकिन हार कभी नहीं पाये।
इतिहास, कथानक, ग्रन्थ भले ही सकल आप पढ़ जाये जी॥

खड़े खड़े ऋषि सोच रहे हैं अच्छी आफत आई।
मेरे क्रोध अरु तप की नृप पर पड़ी नहीं परछाई जी॥

दान दक्षिणा देकर वह तो निज को धन्य है माने।
लेकिन मैं तो फँसा जाल में इसके साथ अनजाने जी॥

स्वतंत्रता के स्वर्गिम सुख में मैं तो जीने वाला।
हरिश्चन्द्र से टकरा मैंने व्यर्थ रोग है पाला जी॥

गजब निष्ठा है इसकी धर्म पर झुकता नहीं झुकाये।
क्या करुं कुछ सूझ रहा नहीं सिर मेरा चकराये जी॥

ऋषि होकर भी हारा मैं तो एक गृहस्थ के आगे।
निकल तीर तरकस से मेरा मेरे पर ही लागे जी॥

पहलीबार हार जीवन मे मैंने किसी से पाई।
और वह भी गृहस्थ से यह दुख ना रहा समाई जी॥

मुँह लटकाये चले ऋषि वे नगर से बाहर आये।
मुक्त हुआ नृप तो चिंता से चिंता ऋषि मन छाये जी॥

काटो तो नहीं खून कि मैं ना अपनी बात रख पाया।
क्षमा करुंगा कभी न उसको उसने मुझे सताया जी॥

कैसे बदला लू मैं उससे कोई मुझे बताओ।
बदले मे सारा ही वैभव मांग अभी ले जाओ जी॥

नभचरो! मत कलरव करके तुम मुझको चिढ़ाओ।
स्वर सुहाना मुझे लगे ना चुप सारे हो जाओ जी॥

देख कालिमा ऋषि मन की संध्या भी हो रही काली।
मौन हुआ विहगों का कलरव झुक गई है हर डाली जी॥

रजनीगंधे! महक तुम्हारी मन मेरा न लुभाये।
हरिश्चन्द्र की छवि आंखों से ओझल नहीं हो पाये जी॥

एक वृक्ष के नीचे आकर डाला ऋषि ने डेरा।
बाहर के संग भीतर भी है उनके घना अंधेरा जी॥

करने बैठे ध्यान परन्तु ध्यान नहीं कर पाये।
नींद चुराई दुष्ट भूप ने ऋषि मन में झल्लाये जी॥

दोहे।

बिखर गया परिवार पर तजा न अपना धर्म।
उत्तम नर त्यागे नहीं, दुख में भी सत्कर्म ॥१॥

कर्म बड़े बलवान हैं, क्या से क्या हो जाय।
जो मालिक बन कर रही, दासी वह कहलाय॥२॥

सूनी आंखों को लिए, सुत का थामे हाथ।
तारा चलती जा रही, आज विप्र के साथ॥३॥

पूर्ववत्

रोहित व तारा को लेकर ब्राह्मण निज घर आया।
बिन पूछे ही घर वालों को सारा हाल सुनाया जी॥

बहुत दिनों से अपने घर में कमी दासी की खलती।
संस्कारवती सुन्दर दासी तो भाग्य से ही है मिलती जी॥

आज योग बन गया सहज ही काशी बीच बाजार।
यह बिकने को खड़ी वहाँ लेने का हुआ विचार जी॥

खरीद कर ही ले आया मैं पाँच सौ दे मुद्राएं।
कर्मों की मारी लगती पर शुभ लक्षण ही पाए जी॥

पुत्र साथ इसके जो है यह बिना दिए ही लाया।
काम करेगा इस लायक जो इसने मुझे बताया जी॥

दृष्टि उठाकर घर वालों ने रानी ओर निहारा।
निर्निमेष वे रहे देखते चेहरा प्यारा प्यारा जी॥

कुलीन घर की है यह नारी चेहरा रहा बताई।
स्वर्गपरी सी सुन्दर है पर नयन उदासी छाई जी॥

गृहस्वामी का सुत तारा को देख बहुत हरसाये।
सोचे क्या यह स्वर्ग सुन्दरी तात मेरे हित लाये जी॥

कामी मुख से भले न बोले, बोल देती है आँखें।
राग दृष्टि से बार-बार वह देह दासी की ताके जी॥

गौर वर्ण आभा छिटकाता ब्रीड़ा नयन समाई।
लुभा रही उसके अधरों की सुन्दरतम अरुणाई जी॥

दिव्य भाल अरु लम्बे बाल तो कटि तक लटक रहे हैं।
श्वेत दंत उस सुन्दर मुख पर आभा छिटक रहे हैं जी॥

करतल भी अरुणिम कैसे हैं शोभा कही न जाये।
परस पाँव इस नारी के तो लगे धरा शरमाये जी॥

विप्र बोला इस दासी को बाहर की कुटी बताओ।
देकर थाली, लोटा, चटाई भोजन इसे कराओ जी॥

क्या-क्या करना इसे प्रिये! तुम समझा देना सारा।
बच्चे! तेरा नाम कहो क्या इसका तो है तारा जी॥

मुझको स्वामी! रोहित कहते मेरे तात और साथी।
इसी नाम से माता मेरी मुझे आवाज लगाती जी॥

कहा विप्र ने बेटे! इनको भोजन तुम करवादो।
तारा बोली-मुझे भूख नहीं बच्चे हित दिलवादो जी॥

नहीं नहीं माँ मुझे न खाना अगर आप नहीं खाओ।
सदा मुझे करवा के भोजन भूखी स्वयं रह जाओ जी॥

मुश्किल से रोहित को समझा भोजन उनसे पाया।
आकर के निर्दिष्ट कुटी में आसन अपना बिछाया जी॥

बड़े प्यार से खिला भोजन रोहित को दिया सुलाई।
शून्य क्षणों में बैठी अकेली याद स्वामी की आई जी॥

हाय! बीती क्या होगी उन पर ऋषि तो बड़े हैं क्रोधी।
रहम नाम की चीज नहीं है बने स्वामी विरोधी जी॥

कौन जानता किसके यहाँ पर स्वामी बने है दास।
कर्ज चुका या नहीं चुका है कौन कहे आ पास जी॥

बनी बात आगे क्या उन संग आकर कौन बताये।
मन नभ में चिन्ता की बदरिया तारा के है छाये जी॥

शान्त कुटी में मंद मंद इक दीपक जलता जाये।
लेकिन तारा के मन का तम कम न जरा हो पाये जी॥

नीर भरे नीरव ठहरे जो अब तो लगे बरसने।
प्यासी अंखियॉ प्रियदर्शन की रह रह लगी तरसने जी॥

अरी हवा! तुम ही जाकर संदेश स्वामी का लाओ।
कहो, केसे हैं नाथ मेरे वे अरे सितारो! बताओ जी॥

काशी में ही है स्वामी या चले गये कहीं दूर।
इन नयनों से देख न पाई मैं तो उनका नूर जी॥

प्रत्यक्ष देख नहीं पाऊं तो भी सपना ही आ जाये।
तो भी इन प्यासी अंखियों को कुछ राहत मिल पाये जी॥

पश्चाताप नहीं इसका कि बनी रानी से दासी।
दु:ख एक कि कहीं ऋषि वहॉ करे न उनकी हांसी जी॥

नींद नहीं नयनों में रानी नभ की ओर निहारे।
शीतल चन्दा भी मानो वहॉ उगल रहा अंगारे जी॥

शान्त चित्त हो, प्रसन्न मन हो निद्रा सुख से आये।
मन व्यथित हो अगर किसी का जगते रात बिताए जी॥

रोते सोचते रात बीत गई पल भर आंखें न सोई।
इधर भोर उजियाली ने आ दिग्पट कालिमा धोई जी॥

परेशान हो सोचे तारा कब तक रहूंगी लेटी।
ब्रह्ममुहूर्त का समय जान कर भजन हेतु उठ बैठी जी॥

बिना कहे उठकर उसने तो आंगन त्वरित बुहारा।
चकित हुई जब विप्र पत्नी ने उसको आके निहारा जी॥

अच्छी भली दासी यह आई जल्दी ही उठ जाती।
क्या क्या करना उसे प्रेम से विप्राणी समझाती जी॥

सर्वप्रथम उठकर करनी है तुम्हे बहिन! पिसाई।
तत्पश्चात् तुम्हें करनी है इस घर की सफाई जी॥

कूए पे जा तुम्हें नित्य ही जल भर कर है लाना।
यदा कदा प्रातः सायं को भोजन बहन! बनाना जी॥

सुत को भी जल्दी ही उठना अभी से तुम सिखलाओ।
बरतन तो कर सके साफ वह राहत तुम कुछ पाओ जी॥

समझदार को बहुत ईशारा सुत को शीघ्र उठाया।
अरुणोदय से पहले ही उठने का लाभ बताया जी॥

बेटे! नमक खाते हम जिनका काम करें सब उनका।
कभी न मुख से यह बतलाना सुत है तू किसका जी॥

जो आज्ञा माँ! तेरी बात को कभी नहीं ठुकराऊं।
जो भी काम हो मेरे लायक करने दौड़ा आऊं जी॥

इतने में आओ रोहित! ब्राह्मण ने दी आवाज।
त्वरित पास में पहुंच के बोला फरमाये क्या काम जी॥

बेटे! चलो साथ में मेरे बगिया तुम्हें बताऊं।
नित्य जहाँ से पूजा हेतु सुमन तोड़ मैं लाऊं जी॥

हुआ साथ ब्राह्मण के रोहित बगिया देखने जाये।
इधर विप्र सुत उठ शय्या से सीधा बाहर आये जी॥

गृह आंगन में अकारण ही इतस्ततः वह डोले।
काम करे जहाँ तारा वहाँ आ जोर जोर से बोले जी॥

तारा नेत्र उठाये न ऊपर रहे काम में लीन।
आगे पीछे फिरे वह उसके लेके भावना हीन जी॥

तभी ब्राह्मणी बोली तारा से भोजन आज बनाओ।
देखूं कैसा बनाती हो तुम तनिक न देर लगाओ जी॥

तारा आई पाकशाला में देखा सब सामान।
किस किस में क्या रखा हुआ है की उसने पहचान जी॥

बैठी बनाने भोजन तारा तुरत किया तैयार।
फिरते घूमते गृहपत्नी भी उसको रही निहार जी॥

बन गया भोजन, परोसा उसने बैठे खाना खाने।
आहार तो लेना ही पड़ता क्षुधा की पीड़ बुझाने जी॥

बड़ा ही मिष्ट लगा वह भोजन करते रह गये सारे।
अरे दक्ष यह पाक क्रिया में सब ही यों उच्चारे जी॥

ब्राह्मण बोला ऐसा भोजन नृप घर में है बनता।
निश्चित वहाँ रही हो दासी ऐसा मुझको लगता जी॥

कहे विप्राणी मुझसे तो ना ऐसा कभी बन पाया।
स्वाद स्वाद में आज मैंने तो बहुत अधिक है खाया जी॥

हमने भी तो कम नहीं खाया बोले सब एक साथ।
इतना खाया इतना खाया सांस नहीं ली जात जी॥

कला बनाने की अच्छी तो स्वाद बहुत बढ़ जाये।
चीज वही पर ढंग नहीं तो रंग नहीं आ पाये जी॥

किसी क्षेत्र का कोई काम हो अच्छाई प्रशंसा पाती।
कला कला ही होती जग में कला सभी को भाती जी॥

दिनभर ब्राह्मण के घर तारा करती रहती काम।
घंटे भर भी बैठ शान्ति से करे नहीं आराम जी॥

कहीं देखलो चाम नहीं है काम ही होता प्यारा।
आलस करने वाला काम में लगता सबको खारा जी॥

घर के काम से निवृत्त हो पशुओं की करे संभाल।
चारा-पानी यथा समय देने का रखे खयाल जी॥

नन्हें बछड़ों को हाथों से कोमल घास खिलाये।
सर्दी गर्मी दोनो से ही तारा उन्हें बचाये जी॥

बछड़े ईर्द गिर्द उसके तो उछल उछल कर दौड़े।
जिधर तारा दे जाती दिखाई वे रुख अपना मोड़े जी॥

पुचकारे तारा पशुओं को सिर पर हाथ फिराये।
बांध रस्सी से उन सबको फिर हंसती हुई घर जाये जी॥

निकल रहे हैं शनैः शनैः दिन ब्राह्मण के घर रहते।
परम धन्य जीवन उसका जो कष्ट धर्म हित सहते जी॥

कर्मोदय से तो सहते हैं सब ही जग में कष्ट।
अशुभ कर्म हो उदित यहाँ सुख बगिया करते नष्ट जी॥

कर्मों का फल पड़े भोगना सागारी या संत।
चाहने मात्र से पतझड़ का नहीं होता कदापि अंत जी॥

कष्ट भोगता हँसते हँसते धर्म के हित जो प्राणी।
मंगलमय होता है जीवन उसका परम कल्याणी जी॥

एक दिवस संध्या को बैठी संगीत सुनाने तारा।
बैठी क्या मानो बरसाने लगी वह रसधारा जी॥

तर्ज—खड़ी नीम के

शुभ कर्मो से नरतन पाया ऐसे ही ना खो जाये।
तप, संयम, सेवा पथ अपना शाश्वत शांति हम पाये।।टेर॥
यह जीवन अनमोल रत्न है इसे न यों ही खोना है।
पुण्य योग से मिला है अवसर पाप-बीज नहीं बोना है।
मोह नीद को उड़ाके भाई! नई चेतना हम लाये॥१॥
भोगों में रचपच खोते जो जीवन वे पछताते हैं।
नरक निगोद में जाकर वे तो भारी कष्ट उठाते हैं।
अतः वासना से ऊपर उठ सदाचार को अपनाये॥२॥
वीतराग अरिहंत सिद्ध को करे अहर्निश हम वन्दन।
जिनकी संस्तुति से हो जाती अग्नि भी पल में चन्दन।
जिनवाणी की पावन बदरी अन्तर के नभ में छाये॥३॥
धर्म के पथ पर जिस जिसने भी अपने कदम बढ़ाये हैं।
इस जग में उनकी महिमा के गीत सर्वदा गाये हैं।
शीष झुकाये 'कमल प्रभा' 'जयवन्त' यहाँ जो वन पाये॥४॥

पूर्ववत्

झूम उठे सुन गीत तारा का अनुपम आनन्द आया।
मधुरिम कैसा कण्ठ निराला अमृत ही बरसाया जी॥

मन करता सुनते ही रहे हम सुनाती यह तो जाये।
मुद्रा खर्च दुखे नहीं स्वामी! दासी अच्छी लाये जी॥

विप्र कहे बेटी! संध्या को गीत एक नित गाना।
बड़ा ही हितकर हुआ मेरे तो घर पर तुमको लाना जी॥

सेवा, सरलता से यों उसने सबके मन को जीता।
इधर विप्र सुत छिप आंखों से छवि तारा की पीता जी॥

आहा! कैसा वदन सलौना शरद चन्द्र सी आभा।
अविरल, चिक्कण दंतावली है जलकण सम शुक्लाभ जी॥

नमित चाप सी भ्रू सुन्दर है नयनाम्बुज बहुत निराले।
शुक मुख सी है भव्य नासिका केश भृंग से काले जी

करतल सुन्दर, पद तल सुन्दर, सुन्दर सारी देह।
मुझे तो लगता है उठ आया पूरा ही छवि गेह जी॥

दिव्य रूप पर मुग्ध हो गया ब्राह्मण का वह पुत्र।
मन ही मन में जगी वासना जोड़ूं इससे सूत्र जी॥

स्निग्ध मिष्ट वचनों से वह तारा को रिझाना चाहे।
समझ गई महारानी मन में इसकी गलत निगाहें जी॥

सावधान इससे रहना है मन इसका तो काला।
ब्रह्म पुत्र होकर भी इसने विकार मन में पाला जी॥

इधर अधीर हुआ ब्राह्मण सुत रोक नहीं मन पाया।
मौका देखकर एकदा वह दासी के पास है आया जी॥

बोला-देवी! देख तुम्हें तो दया मुझे है आये।
दिनभर पिली काम में रहती आराम नहीं क्या भाये जी॥

जब देखूं तब लगी काम में पलभर चैन न लेती।
क्यों कोमल काया को इतना कष्ट देवी! तुम देती जी॥

नैन उठाकर मुझको देखो अपने पास बुलाओ।
यद्यपि दासी इस घर की पर मुझको दास बनाओ जी॥

भद्रे! तेरे नयन वाणों से विद्ध हुआ दिल मेरा।
खाते पीते सोते उठते चित्र बने बस तेरा जी॥

सोचे तारा मेरी छवि पर स्वामी सुत लुभाये।
बड़ा सजग रहना होगा कहीं बात बिगड़ नहीं जाये जी॥

अभी उचित है नहीं बोलना चुप में मेरी भलाई।
यही सोच वह मौन रही थी पलकें नहीं उठाई जी॥

उत्तर नहीं पा विप्रपुत्र मन मसोस कक्ष निज आय।
काम न बनता देख के अपना मन उसका मुरझाया जी॥

आँख उठा कर भी तो यह ना कदापि मुझको देखे।
कैसे पिघले मन इसका तो तीर कौनसा फैंके जी॥

इतने दिन हो गए आये पर करे न मुझसे वात।
तो क्या अवसर पाकर के मैं पकड़ूं इसका हाथ जी॥

नहीं नहीं ऐसा करने पर यदि वह चिल्लाये।
तो मेरा इस घर में जीना ही मुश्किल हो जाये जी॥

अब तो यही करुं कि लालच देकर इसे लूं जीत।
कौन जगत में ऐसा जिसको धन से हो ना प्रीत जी॥

मूढमती वह क्या जाने साधारण नहीं यह नारी।
तूफानों में मंद नहीं हो ऐसी यह उजियारी जी॥

राजसुखों तक को ठुकराया बनी रानी से दासी।
धर्म के खातिर कष्ट झेल रही फिर भी नहीं उदासी जी॥

धर्म हेतु जब सब कुछ त्यागा अब लालच क्या जागे।
क्षर के हित अक्षर जो त्यागे वे नर होते अभागे जी॥

बुरी नीयत से विप्रपुत्र वह ताक झांक है करता।
जान बूझकर उस दासी के आगे पीछे फिरता जी॥

एक दिवस वह सुन्दर साड़ी लाया तारा पास।
कितनी सुन्दर वह बोला बिखरा अधरों पर हास जी॥

तेरी इस कमनीय देह के लायक है यह साड़ी।
इसे पहन तो लगोगी ऐसी जैसे नवली लाड़ी जी॥

यद्यपि तारा नहीं चाहती करुं मैं इससे बात।
मन करता शिक्षा दूं इसको जमा कटि पर लात जी॥

पर मुझको तो पता नहीं कब तक रहना इस घर में।
मगरमच्छ से वैर उचित नहीं रहना यदि सागर में जी॥

मीठे मैं ही ठुकरा दूँ मैं इसकी यह मनुहार।
बोली रानी विप्रपुत्र से करके यही विचार जी॥

स्वामी सुत! ऐसी साड़ी तो दासी तन नहीं सोहे।
स्वामिनी को आप पहनाओ यह उनको ही मोहे जी॥

वे ही पहनते वसन कीमती जिन्हें नहीं कुछ काम।
खा पीकर करना है जिनको दिनभर ही आराम जी॥

मैं तो दासी हूँ इस घर की कैसे बने यह बात।
लगे काम में रहना पड़ता मुझको तो दिन रात जी॥

इतना कहकर चली वह तारा दुष्ट रहा कर मलता।
बड़ी तेज है यह दासी तो वश मेरा नहीं चलता जी॥

पर इतने में हार न मानूं चालू रखूं प्रयास।
कभी तो होगी पूरी मेरे मन की यह अभिलाष जी॥

जाने से तो रही कहीं यह फिर क्यों होऊं हताश।
एक दिवस तो आयेगा ही बुझेगी मन की प्यास जी॥

शास्त्र ज्ञान देने के बहाने फेकूं मैं ब्रह्मास्त्र।
यही सोच स्नानादि करके पढने बैठा शास्त्र जी॥

खोल ग्रन्थ वह विप्रपुत्र अब जोर जोर से बोले।
सार यही नरतन पाने का सद्गति ताले खोले जी॥

मलिन विचारों के मानव ये कैसे होते धूर्त।
अन्दर पूरे रावण ऊपर राम रूप है मूर्त जी॥

जग में होते कामी, कपटी, लोभी कई शैतान।
पहन मुखोटा धर्म का ठगते वे भोले इंसान जी॥

वह बोला आओ दासी तुम धर्मवाणी यहाँ सुनलो।
आठ प्रहर क्या काम काम है धर्म ध्यान कुछ करलो जी॥

स्वामी की सेवा करना ही धर्म दास का मानूं।
इसमें पोल नहीं पलभर भी और बात नहीं जानूं जी॥

अब क्या करुं न पिघले यह तो सोचे ब्राह्मण लाल।
इसको फॅसा न पाया अब तक मेरा एक भी जाल जी॥

यह रोहित भी हर पल इसका नहीं छोड़ता साथ।
इसके रहते हुए आयेगी नहीं मेरे यह हाथ जी॥

बहुत बड़ा बल सुत नारी का जाने दुनिया सारी।
पति-विरह भी सह लेती है पुत्र सहारे नारी जी॥

कांटा है मुझ पथ का रोहित बहुत बड़ी है बाधा।
इसे दूर करने से शायद रोग मिटेगा आधा जी॥

पीड़ित इसको इतना करुं कि छोड़ के घर भग जाये।
दुष्ट मनुज निज स्वार्थ साधते जल में आग लगाये जी॥

यही सोचकर रोहित को वह देने लगा है कष्ट।
मुखर वासना हो जाने पर होय विवेक विनष्ट जी॥

रह रह ऐसे काम रोहित को ब्राह्मण सुत बतलाये।
मन लगा कर करने पर भी जिन्हें नहीं कर पाये जी॥

बच्चा बच्चा ही होता है करे शक्ति अनुसार।
नहीं करने पर हो कुपित लातों की करे बौछार जी॥

अरे बोकड़ा बना यह खा खा मत दो इसको रोटी।
करते काम तो मौत आती कह पकड़ खींचता चोटी जी॥

लाते, घूंसे और तमाचे जब चाहे झाड़ देता।
पिट बिचारा रोहित मॉ के आंचल में छिप लेता जी॥

मॉ की ममता आखिर कब तक ऐसा देख है पाये।
हिम्मत कर तारा एक दिन तो साफ उसे सुनाये जी॥

काम करेगा बच्चा तो बच्चे के ही अनुसार।
फिर भी करता सकल काम यह नहीं करे इनकार जी॥

इतने पर भी जब चाहो तब देते इसको मार।
निर्दयता की भी सीमा है थोड़ा करो विचार जी॥

और भी सुनिये अलग नहीं, यह भाग मेरा ही खाये।
नहीं आपसे कुछ भी लेता फिर क्यों जुल्म ढहाये जी॥

विप्रपुत्र ने कहा चीख कुछ ज्यादा ही सुख पाया।
तभी तो तुम दोनों का मुझको लगता सिर चढ़ आया जी॥

घर वालों से भी बोला वह बात मेरी सुन लेना।
बिना बताये मुझको भोजन इन्हें नहीं कुछ देना जी॥

अब पहले से आधा भोजन तारा को है मिलता।
लेकिन कष्ट भोग कर भी दिल उसका नहीं पिघलता जी॥

खिला रोहित को कई बार तारा भूखी रह जाती।
माँ की ममता सुत को भूखा देख कभी क्या पाती जी॥

दुष्ट कष्ट देने के भाव से रोटी देता गिन गिन।
तारा भी कृश होने लगी है कम भोजन से दिन दिन जी॥

अपर्याप्त मिले भोजन पर काम तो पूरा करना।
दास जीवन की करुण कहानी फूंक फूंक डग भरना जी॥

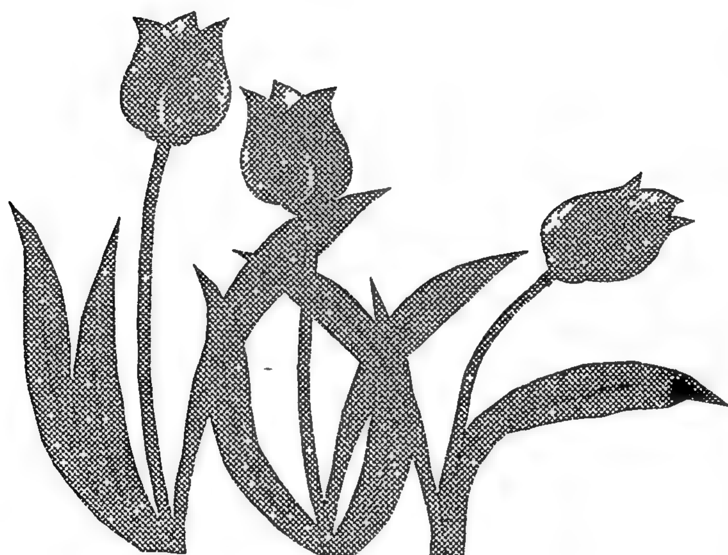
सोचे तारा गृहस्वामी को अगर बात बतलाऊं।
क्लेश बढेगा इससे घर में यह नहीं मैं चाहूं जी॥

शायद स्वामी सुत सोचे यह कष्टों से घबरा कर।
अपना लेगी आखिर मुझको और न चारा पाकर जी॥

लेकिन पिघलूं जो क्या मेरे पॉव तले है काई।
यह क्या इसकी छू न सकेगी मुझको तो परछाई जी॥

सावधान रह कर तारा अब अपना समय बिताये।
खाते पीते सोते उठते प्रभु का ध्यान लगाये जी॥

उदधि-उर्मियों की ही भांति आता स्वामी ध्यान।
उन्हें सुखी रखना हर पल ही हे मेरे भगवान् जी॥





अष्टम किरण

सज्जन का सम्मान

बोला ब्राह्मण पुत्र यों आ तारा के पास।
पूजा हेतु लाना है सुरसरी से जल खास

जो आज्ञा कह चल पड़ी तारा तट पर जाय।
इधर का भूप का हाल क्या, वह भी दूं बतलाय।

सज्जन जाये जिस जगह, बदले वह परिवेश।
जहाँ कहीं सज्जन बसे, मधुमय हो वह देश॥

पूर्ववत्

आगे हरिजन पीछे नृपति दोनो चलते जाये।
आगे पीछे चलते हुए वे नगरी बाहर आये जी॥

एक बड़े बाड़े में कच्चे स्वच्छ निपे घर देखे।
हरिजन हुआ प्रविष्ट उसी में हरिश्चन्द्र को लेके जी॥

पहुँच के अन्दर हरिजन ने आवाज एक लगाई।
लिये क्रूरता मुख मण्डल पर महिला बाहर आई जी॥

हरिजन की वह घरवाली थी बड़ी तेज तर्रार।
बातों से बिच्छू बन काटे, नागिन सी फुफकार जी॥

बोली सुबह से निकले घर से अब जाकर के आये।
पीछे कुछ भी बात बने तो कौन उसे सलटाये जी॥

बहुत काम था आज नगर में धन भी खून कमाया।
उत्तम नर बिकता देखा तो क्रय करके मैं लाया जी॥

ज्ञानवान और समझदार है लगते आफत मारे।
दशार्धशत[1] मुद्रा देने से हो गए आज हमारे जी॥

सुबह शाम दो ज्ञान भरी बातें ही हमें सुनाये।
जीवन सफल हमारा होगा अगर एक लग जाये जी॥

सेवक इनको नहीं समझना देना नित सम्मान।
कुछ भी कष्ट नहीं हो इनको रखना पूरा ध्यान जी॥

देख भव्य आनन ही जिनका हर्ष होता है मन में।
उनके चरण हमारे घर में पड़े हैं पूजो उनको जी॥

भला था हरिजन तो लेकिन फूहड़ उसकी घरवाली।
ढग से बात करे न कभी वह दिल की पूरी काली जी॥

खाते हुए बोलती हरदम जहर भरा वाणी में।
बोली इतनी मुद्रा डाली क्यों तुमने पानी में जी॥

दास रुप में इसे खरीदा क्या यहाँ पूजा करने।
काम नहीं करवाना तो क्या लाये केवल चरने जी॥

मुझको पूजा करनी आती समय आये कर दूंगी।
बिना बताये काम किया क्यों खबर आपकी लूंगी जी॥

चुप हो जा बक बक मत कर तूं बात हृदय में धरले।
सिर मत खाया कर मेरा तूं कहूँ वही बस करले जी॥

१ – पाच सौ

हरिश्चन्द्र बोले-हे माता! क्रोध कभी नहीं करना।
महाभयंकर नाग काला यह सदा ही इससे डरना जी॥

तन ही नहीं आत्मा भी जलती क्रोध एसी है आग।
जहाँ भी सुलगे सुख शांति का उजड़ जाता है बाग जी॥

जहर हलाहल इसे कहा परिणाम अशुभ ही जानो।
दुर्गति का ताला खुलता है बात सत्य यह जानो जी॥

वर्षों पुराने स्नेहिल नाते जाते पल में टूट।
भाई भाई में क्रोध के कारण पड़ जाती है फूट जी॥

काम क्रोध से कभी न बनता शान्ति सदा सुखदाई।
क्रोध विवेक को खा जाता जीवन बनता दुखदाई जी॥

क्रोध जगाना कर्म बांधना कहे ज्ञानी निर्गन्थ।
अतः प्रार्थना सविनय माता तजो क्रोध का पन्थ जी॥

हर्षित हुआ हृदय हरिजन का ज्ञानामृत पिलाया।
यथा संभव मैं बचूं क्रोध से अच्छा मुझे जगाया जी॥

ऐसी बातें सदा आप तो बैठ के हमें सुनाये।
भला भाग्य में कहाँ है सुनना कर्म ही ऐसे कमाये जी॥

सुबह सुबह मेरी घरवाली राजमहल में जाये।
मार्जन कर आंगन का प्रतिदिन पुनः लौट कर आये जी॥

तीन चार चक्कर मैं भी मरघट के नित्य लगाऊं।
आने वालों से कर ले कर लकड़ी मैं पकड़ाऊं जी॥

हूँ सदस्य मैं भी इस घर का शंका तनिक न लाये।
कभी भी कोई कैसा काम हो सहर्ष आप बतलाये जी॥

हरिजन बोला-अच्छा अब तो भोजन करिये आप।
राजा-बोला-रात्रि भोजन बतलाया महापाप जी॥

'निशि भोजन नहीं कभी भी करना' नियम सदा यह पालूं।
भोजन तो क्या पानी भी मैं मुख में नहीं है डालूं जी॥

पंछी तक ना करे निशि में हम तो है इंसान।
मर्यादित रहना ही है इस नर जीवन की शान जी॥

असुरों का भोजन रजनी का कहते हमारे गुरुजन।
कई रोगों से मुक्ति पाई तज मैने निशि भोजन जी॥

पाचन तंत्र शिथिल हो जाता रवि छिपने के बाद।
वैद्य, हकीमों की ये बातें रखिये हरदम याद जी॥

भोजन-शयन बीच में अच्छा रहता है अन्तराल।
पाचन अच्छा होता उसका चले जो पैदल चाल जी॥

सत्य बात है हरिजन बोला मैं भी दिन में खाऊं।
कीट पतंगे बढ़े निशा में देख मैं तो घबराऊं जी॥

अब आगे से और अधिक मैं रखूंगा इसका ध्यान।
आज आप से इन बातों का हुआ मुझे तो ज्ञान जी॥

उठ हरिजन ने महीपाल को कुटिया एक बताई।
आप करो आराम इसी में की थी सुबह सफाई जी॥

पड़ी खाट पर हरिजन ने तो बिस्तर दिया बिछाई।
सो गया राजा आकर उस पर खुशी है मनके माई जी॥

हरिजन हाथों बिका परन्तु रह गई मेरी लाज।
आप कृपा से भगवन्! मेरा धर्म रह गया आज जी॥

ब्राह्मण के घर गई महारानी इसका मुझको ध्यान।
लेकिन मैं हरिजन के यहाँ हूँ उसको कहाँ है ज्ञान जी॥

मुझे खुशी है इसी बात की रह गया मेरा धर्म।
काम करूं चाहे कहीं पर भी इसमें क्या है शर्म जी॥

सर्वश्रेय रानी को ही है झूठ जरा नहीं इसमें।
नारी हो करके भी कैसा साहस भरा है उसमें जी॥

अगर नहीं हिम्मत करती बिकने की वह महारानी।
तो समाप्त शायद हो जाती मुझजीवन कहानी जी॥

चिन्तन ही चिन्तन में नृप को निद्रा ने आ घेरा।
खुली आँख तब जब प्राची मे हुआ भोर उजेरा जी॥

उठ राजा, दैनिक कृत्यों से जल्दी हो निवृत्त।
हरिजन को आ शीष झुकाया खुश था उनका चित्त जी॥

अरे अरे! क्या करते हो मत मुझ पर भार चढ़ाओ।
ज्ञान भरी कुछ बातें सुना कर घूम गंगा तट आओ जी॥

बैठ भूपति लगा सुनाने ध्यान से हरिजन सुनता।
धर्म कथा में रस लेता जो कर्मो को वह धुनता जी॥

भूप कहे कर्मो ने जीव को किया काया में कैद।
कर्मो के कारण ही तो है जीव जीव में भेद जी॥

कर्म सहित जो चेतन है संसारी वह कहलाये।
अकर्मा अरु देह रहित को आगम सिद्ध बताये जी॥

अगर जीव परिपूर्ण रूप से छोड़े कर्म का साथ।
तो वह सचमुच बन जाता है तीन लोक का नाथ जी॥

सकल कर्म क्षय का अवसर भी नर जीवन में मिलता।
तप संयम से इस आत्मा का मूल रूप है खिलता जी॥

क्या है संयम? हरिजन बोला-आप मुझे बतलाये।
तप किसको कहते है यह भी आप मुझे समझाये जी॥

'इन्द्रिय और मन का नियमन' है स्थूल संयम परिभाषा।
'विषय वासना से विरति' या नहीं भोग अभिलाषा जी॥

कर्म दहन जिसमें होता है, होते तप्त विकार।
तप कहलाता वह जिससे हो हल्का शेष कर्म का भार जी॥

'इच्छा निरोध' अर्थ एक यह भी तप का बतलाया।
कर्म निर्जरा का यह उत्तम माध्यम एक कहाया जी॥

क्या है निर्जरा? मार्जनी है, आत्मांगन स्वच्छ बनाती।
कर्म रेणु से आवृत्त जो छवि, मार्जन कर निखरांती जी॥

भाव निर्जरा का रख जिसमें इच्छाओं का रोधन।
वही क्रिया सम्यक् तप जिससे कर्म मैल परिशोधन जी॥

अन्त न जब तक आस्त्रव का है जन्म मरण अमुक्ति।
सम्यक् तप, संयम आराधन कर्म मुक्ति की युक्ति जी॥

क्या है आस्त्रव? नये नये ही शब्द सुने है आज।
देख जिज्ञासा उस हरिजन की बोले यों महाराज जी॥

होकर के आकृष्ट कर्म परमाणु जिनसे आते।
हिंसादि वे कारण आस्त्रव आगम हमें बताते जी॥

द्रव्य और भाव ये दो आस्त्रव के भेद बताये।
अध्यवसाय भाव आस्त्रव है, कर्मागम द्रव्य कहाये जी॥

खुले भवन में रज के कण तो सहज ही होय प्रवेश।
द्वार, खिड़कियाँ अगर लगी तो रक्षा होय विशेष जी॥

द्वार है आस्रव कपाट संवर सदा लगाये रहना।
आत्म भवन में धूल न आये ज्ञानीजनों का कहना जी॥

देख बोलते बहुत देर से हरिजन पत्नी आई।
नहीं काम पर जाना है क्या बड़ बड़ कर झल्लाई जी॥

जाता हूँ जाता हूँ लेकिन रखना तुम यह ध्यान।
प्रकृति से लाचार हो पूरी करने बैठो अपमान जी॥

लाठी कर में लेकर हरिजन चला वहाँ से जाये।
हरिश्चन्द्र बोले माता! कोई काम मुझे बतलाये जी॥

घूमो फिरो रहो बस बैठे काम स्वामी ने बताया।
पैर पटकती गई वह घर में देख भूप मुस्काया जी॥

एकदा बोला हरिजन आकर नृपति के यों पास।
अधरों पर मुस्कान नहीं क्यों चेहरा आज उदास जी॥

नृप कहे स्वामी! बात मान मैं ज्ञान की चर्चा सुनाऊं।
लेकिन अच्छा लगे न मुझको बैठा बैठा खाऊं जी॥

हराम का है खाना यह तो मन मेरा नहीं माने।
दिल दुखता है काम किए बिन बैठ जाऊं यो खाने जी॥

अतः मात से कह कोई भी काम मुझे दिलवाये।
दिनभर रहूं निकम्मा इससे मन मेरा मुरझाये जी॥

मैं स्वयं जब रहूँ घूमता आपको क्या बतलाऊं।
ज्ञान की बातें रहो सुनाते जब भी खाली पाऊं जी॥

हरिजन तो कह चला गया नृप कहे मात दो काम।
अटपटा अब लगता मुझ को नित्य यह आराम जी॥

बैठे बैठे भी नहीं होता समय मेरा तो पास।
सब सुख है पर इसी बात से मम मन रहे उदास जी॥

बात दूसरी इस घर मे मैं आया हूँ बन दास।
मालिक की सेवा करना ही धर्म दास का खास जी॥

अगर नहीं कुछ काम करुं तो पतित धर्म से होऊं।
मैं नहीं चाहूं इस जीवन में पाप बीज कोई बोऊं जी॥

मत मुझको उपदेश सुनाओ उनको पता चलेगा।
कौन बचायेगा लाठी का जब प्रसाद मिलेगा जी॥
स्वामी ऐसे नहीं है माता भ्रम अपना हटाओ।
क्या करना है काम मुझे तो शीघ्र आप बतलाओ जी॥

करना ही है काम अगर तो देर न जरा लगाओ।
घड़ा उठा गंगा तट से जल पीने का भर लाओ जी॥

खुशी हुई भरपूर भूप को काम आज तो पाया।
उठा घड़ा चल पड़ा वह तो गंगा तट पर आया जी॥

एक पॉव पर दास दासियॉ जिनका हुक्म उठाये।
वे ही दास बन आज धर्म हित जल भरने को आये जी॥

सोच-रहा नृप तो दास का जीवन बदतर है होता।
वृषभ की ज्यों अपने कंधों पर बोझ वह तो ढोता जी॥

पर मम स्वामी बहुत दयालु अद्‌भुत उनका स्नेह।
उनके कर्ज से दवी है मेरी इस जीवन की देह जी॥

निष्ठुर है गृहस्वामिनी लेकिन दाल नहीं गल पाती।
लट्ठ देख स्वामी के कर में चुप वह हो जाती जी॥

घट पानी में पड़ा हुआ है सोच रहा नृप मन में।
अरे मुझे तो जाना जल्दी मैं खोया चिन्तन में जी॥

झट उठ लगे उठाने घट पर उठा नहीं नृप पाये।
इधर उधर देखा उन्होंने कोई आके उठाये जी॥

दी दिखाई दूर घाट पर जल भरती एक नारी।
सिर पर मुझे घड़ा रखवादो भूप रहा पुकारी जी॥

सुन आवाज नारी ने मुड़ कर नृप की ओर निहारा।
अरे अरे स्वर स्वामी सा ही लग रहा यह तो प्यारा जी॥

और नहीं वह नारी कोई तारा ही थी भाई।
देख स्वामी को गंगा तट पर दौड़ पास वह आई जी॥

मिलन अचानक हुआ जान कर नीर नयन भर आया।
खुशी के मारे पल भर तो नहीं बोल कोई था पाया जी॥

राजा को तो पता यह था कि ब्राह्मण घर रानी।
लेकिन ज्ञात न तारा को क्या पीछे बनी कहानी जी॥

बोली खुश हो स्वामिन्! ऋषि के ऋण का हुआ क्या हाल।
विश्वामित्र ने नूतन तो नहीं फेंका कोई जाल जी॥

बिक हरिजन के उसी दिवस दे दी मुद्राएं तमाम।
कष्ट नहीं कुछ भी मुझको वहाँ, है पूरा आराम जी॥

प्रथम बार ही जल लेने को रानी! यहाँ मैं आया।
अति आग्रह करने पर ही माता ने काम बताया जी॥

सेवा का फल भी तो मैंने त्वरित आज ही पाया।
मिलन हो गया तुमसे अचानक कह राजा मुसकाया जी॥

तुमने कहा हरिजन के भी बिक जाना पड़े मैं जाऊं।
अगर कर्ज चुकता हो हमारा शर्म नहीं मैं लाऊं जी॥

तुम न सही मैं ही बिक कर के हरिजन के घर आया।
धर्म की बातें रहूं सुनाता यही काम वहाँ पाया जी॥

रोहित का क्या हाल है रानी कृश क्यों देह तुम्हारी?
अरुणाभा गायब चेहरे की लगी क्या कोई बीमारी जी॥

सब कुछ ठीक ठाक है स्वामी कार्य करुं मैं अपना।
दास दास ही होता जग में पड़े उसे तो तपना जी॥

फिर भी नहीं बात चिन्ता की सुख से समय है जाये।
और दुःख नहीं कोई परन्तु आपकी याद सताये जी॥

मुझे भी पहली बार स्वामी ने जल हित यहाँ भिजवाया।
भिजवाया क्या भाग्य मेरा ही मानू खींच कर लाया जी॥

दर्शन पाकर आपके स्वामी स्वस्थ हुआ मन मेरा।
कुछ क्षणें की इस चर्चा से मिट गया सारा अंधेरा जी॥

सदा मुझे यह चिन्ता सताती बना पीछे क्या हाल।
पूर्ण प्रतिज्ञा हुई, नहीं या, रहे क्षुब्ध मन-ताल जी॥

तभी ध्यान आया तारा को बहुत हो गई देर।
स्वामी को यह पता चला तो समझो नहीं है खैर जी॥

अतः कहा तारा ने स्वामी अब मैं यहाँ से जाऊं।
कर विलम्ब अपने गृहपति का क्यों मैं रोष बढ़ाऊं जी॥

मन तो करता घंटों ही मैं करुं बैठ कर बात।
पर स्वेच्छा का महत्व न होता दास जीवन में नाथ जी॥
भूप कहे अच्छा तो फिर यह घड़ा मुझे उठवादो।
बड़ा भारी है, उठा न पाऊं कंधे पर रखवादो जी॥
क्षमा करे स्वामी! ब्राह्मण घर मैं करती हूँ काम।
पता पड़े मालिक को यदि तो जीना होय हराम जी॥
मैं उपाय बतलाऊं स्वामी गहरे जल में जाओ।
फिर भरकर पानी से घट कंधे पर वहीं उठाओ जी॥
नहीं जरुरत अन्य किसी की काम स्वतः बन जाये।
किया भूप ने वैसा ही तो झट उठा वे पाये जी॥
रानी सूझ निराली तेरी अच्छी युक्ति बताई।
दास धर्म रह गया हमारा यह भी है चतुराई जी॥
देखा परस्पर स्नेह से फिर वे चले उठा घट पानी।
निज निज पथ पर प्रसन्न होकर जा रहे राजा रानी जी॥
दुष्ट देव जो हरिश्चन्द्र को सत्य से डिगाना चाहे।
मौका मिले चलित करने का रहती सदा निगाहें जी॥
देखा उसने घट ले करके हरिश्चन्द्र है जाये।
ऐसा चक्र चलाया सुर ने नृपति ठोकर खाये जी॥
गिरा भूप फूटा घट भी घुटनों पर आई चोट।
कंकर काटे चुभे नीचे का कट गया किचिंत् होट जी॥
अति आग्रह पर तो मुश्किल से काम मिला था आज।
वह भी पूर्ण नहीं कर पाया सोचे यों महाराज जी॥
घड़े के टुकड़े टुकड़े देखकर हरिश्चन्द्र घबराये।
सहज नहीं है झूझ स्वामिनी क्या वह सजा सुनाये जी॥

होना सो होगा पर घर तो पड़ेगा मुझको जाना।
यही सोच उठ वहाँ से राजा तुरंत हुआ रवाना जी॥
भीगा तन अरु रिक्त हस्त है घर में किया प्रवेश।
दशा दास की देख स्वामिनी बोली ला आवेश जी॥
अरे कहाँ घट रख आये हो, बदन भिगोया कैसे।
जल लेने भेजा था मैंने चुप क्यों खड़े हो ऐसे जी॥
नृप बोला ठोकर लगने से संभल नहीं मैं पाया।
गिरते ही घट फूट गया सिर मेरा तो चकराया जी॥
अरे दुष्ट! पापी! तू मेरे घर का नाश करेगा।
मोहित मालिक तुमसे लेकिन मेरे हाथ मरेगा जी॥
मरती खपती जैसे तैसे इस घर को यहाँ चलाऊं।
ठहर आज जलती लकड़ी ले तुझको मजा चखाऊं जी॥
उसी समय हरिॐ बोलते हरिजन घर में आया।
पृथ्वीपति पर पत्नी को यो उसने बरसते पाया जी॥
हरिजन बोला अरे हुआ क्या क्यों यह मचा तूफान।
किसके सामने बोल रही क्या यह भी नहीं कुछ भान जी॥
उठा के लाठी बोला हरिजन ठहर अभी बतलाऊं।
बिना उतारे तेरी आरती चैन नहीं अब पाऊं जी॥
देख स्वामी को लट्ठ उठाते हरिश्चन्द्र घबराये।
मेरे कारण इस घर में कहीं भारत न छिड़ जाये जी॥
पकड़ हाथ हरिजन का बोले हरिश्चन्द्र महाराज।
दोषी तो मैं हूँ स्वामी, क्यों स्वामिनी पर नाराज जी॥
मुश्किल से तो काम बताया विनती करते करते।
घट भर लाने की अनुमति दी वह भी डरते डरते जी॥

सौंपा काम भी कर नहीं पाया उल्टा किया नुकशान।
अतः स्वामिनी का स्वामी! ना करे आप अपमान जी॥

हरिजन बोला-हरदम यह तो बड़ बड़ करती रहती।
बहुत दिनों से देख रहा मैं मन आये वह कहती जी॥

कहाँ भाग्य में इस दुष्टा के सत्पुरुषों का संग।
जब देखो तब जंग मचाती यह भी है कोई ढ़ंग जी॥

समझाये भी नहीं समझती नारी या बिमारी।
उपचार आज तो निश्चित करना लिया हृदय में धारी जी॥

प्रतिदिन की यह किचकिच मुझको किंचित् नहीं सुहाये।
अच्छा हो कि इस नजरों से दूर आप हो जाये जी॥

पता नहीं कब क्या कर बैठे सह नहीं मैं पाऊं।
अतः रहो श्मशान में आप तो मिलने वहीं मैं आऊं जी॥

जैसी आज्ञा स्वामी! आपको क्या करना वहाँ काम।
हर मुर्दे का एक टका मै ले करना बस आराम जी॥

इसके बदले उस मरघट से उनको ईंधन देना।
एक टके से कम या ज्यादा उनसे नहीं है लेना जी॥

क्षमा मात! मुझको करना कह कदम भूप उठाये।
हरिजन भी ले हरिश्चन्द्र को मरघट में है आये जी॥

देख भूप की सज्जनता विस्मय स्वामिनी लाये।
अहो! अहो! कैसी समता है सब कुछ ही सह जाये जी॥

मैने तो प्रतिदिन ही इनको जली कटी थी सुनाई।
लेकिन सहनशीलता हरदम इन्होंने दरसाई जी॥

अंकुश नहीं जिह्वा पर मेरे बोलूं जो मन आये।
स्वामी हाथ उठा मेरे जब चाहे तभी जमाये जी॥

इनके कारण ही इतने दिन हुई न मेरी पिटाई।
जब भी बने प्रसंग बीच में आकर लेते बचाई जी॥

खड़ी खड़ी वह सोच रही इतने में हरिजन आया।
सूना सूना लगा उसे घर मन उसका भर आया जी॥

हरिजन पत्नी देख स्वामी को आई उनके पास।
बोली पॉव पडूं मैं स्वामी! मत होओ उदास जी॥

अब न कभी मैं क्रोध करूंगी लिया हृदय में धार।
अनुताप मुझे है उन संग जो अशिष्ट किया व्यवहार जी॥

आप कहो तो चलूं मैं मरघट नाथ! आपके साथ।
क्षमा मांगलू जाकर उनसे झुका चरण में माथ जी॥

सहसा लख ऐसा परिवर्तन विस्मय हरिजन लाये।
भद्रपुरुष की संगति आहा! कैसा असर दिखाये जी॥

उज्जवलता से हारी मलिनता समता ने जीती बाजी।
सज्जनता नहीं दुर्जनता ही सदा जगत में लाजी जी॥

हरिजन बोला हाथ आज से अब नहीं कभी उठाऊं।
उनकी कृपा से बदल गई तुम यही सोच सुख पाऊं जी॥

यहॉ अकेले वे रहते वहाँ कई आए कई जाए।
काम उन्हें कुछ मिल जाने से मन उनका लग जाए जी॥

इतना कह आ खाट पे हरिजन नयन बंद कर सोया।
पश्चाताप कर उस नारी ने भी निज मन को धोया जी॥



नवम किरण

उजड़ा उद्यान

दोहा

विप्र पुत्र की ना हुई, सफल एक भी चाल।
अब सुनिये माँ पुत्र का, बनता जो है हाल॥

पूर्ववत्

सुत के संग श्रम कर महारानी अपना समय गुजारे।
मूल्य नहीं पाकर मेहनत का रोहित मन में विचारे जी॥

मम माता तो ब्राह्मण के घर दासी बन कर आई।
पुत्र होने के कारण मुझको अपने साथ वह लाई जी॥

माता के भोजन में से ही मिलता मुझको खाना।
फिर भी सुबह से संध्या तक नित पड़ता बोझ उठाना जी॥

प्रतिदिन प्रातः उठकर के मैं राज बाग में जाऊं।
सुन्दर सुन्दर सुमन तोड़कर पूजा हेतु लाऊं जी॥

दिनभर रह रह कई काम मुझसे है ये करवाते।
रोज शाम को अपने पाँव पण्डित जी दबवाते जी॥

माँ दासी है इस घर की पर मैं तो नहीं हूँ दास।
फिर क्यों मैं परतंत्र रहूं यहाँ करुं क्यों इनकी आश जी॥

मम कारण माँ भूखी रहती साफ यह मैं जानूं।
कितना प्यार है उनका मुझ पर यह भी मैं पहचानूं जी॥

अब इतना भी नहीं छोटा कि पेट न मैं भर पाऊं।
फिर क्यों भूखी रखूं उन्हें क्यों मैं भी कष्ट उठाऊं जी॥

यही सोच एकदा दिन रोहित अपने भाव सुनाये।
माँ! मैं अब स्वतंत्र जीऊंगा, अनुमति आप दिलाये जी॥

काम पूरा लेकर भी ब्राह्मण भूखा हमें सुलाये।
कल से काम मैं करुं न इनका आप मौन रह जाये जी॥

आप दासी मैं नहीं दास हूँ करुंगा उपक्रम ऐसा।
मुक्त करूंगा मात आपको चुका विप्र को पैसा जी॥

बेटे! यह क्या बोल रहे हो फटे कलेजा मेरा।
मुझ जीवन अंधियारी में है तू ही एक उजेरा जी॥

काम करने की उम्र नहीं है, मन में तनिक विचारो।
गुलाबी बचपन प्यारा तुम्हारा इसको अभी संवारो जी॥

मेरी चिंता करो न माता, कर सकता मैं काम।
वह सुत क्या जो मात तात को दे न सके आराम जी॥

मेरे कारण भूख सहो यह उचित न मुझको लगता।
दिन दिन काया कृश हो रही है, मन मेरा तो दुखता जी॥

संतान वही जो तात मात का हरे सकल संताप।
काम मुझे अब वह करना है मुक्ति पाओ आप जी॥

दिनभर पिलता रहूँ काम में ऊपर अत्याचार।
यह तो सहन न होगा मुझसे स्पष्ट रहा उच्चार जी॥

कल से अन्न नहीं इस घर का मुझे तो माता खाना।
प्रातः होते ही निकलूं घर से शाम होने पर आना जी॥

बेटे! तुझे देखकर ही तो अपना दुःख भुलाऊं।
अगर नहीं दिनभर देखूं तो मन ही मन मुरझाऊ जी॥

हिम्मत तो रखनी होगी माँ! जब मैं बाहर जाऊं।
मुरझाया जो मुख मण्डल यह इसको पुनः खिलाऊं जी॥

बाते बहुत बनाने लगा तूं लाल! मेरे अब सो जा।
मन आये वह करना फिर तू जरा बड़ा तो हो जा जी॥

कैसी भक्ति मात तात की अरे सपूतो! जानो।
बन के नाग मत डसो रे उनको सेवा पथ पहचानो जी॥

तात मात संतान के खातिर कितने सहते कष्ट।
मत होने दो उनके सपने इस जीवन में नष्ट जी॥

अच्छा तो फिर आज कहानी माता! मुझे सुनाओ।
मन मेरा आकुल व्याकुल है, थोड़ा तुम बहलाओ जी॥

शान्तिनाथ की कथा तारा अव रोहित को सुनाये।
सुनाते सुनते माँ सुत दोनों निद्रा में खो जाये जी॥

किरण माली मुस्काया आंखें रोहित ने तब खोली।
कर प्रणाम माता को घर से चला हाथ ले झोली जी॥

अरे कहाँ वह गया है रोहित विप्र ने दी आवाज।
फूल अभी तक भी नहीं लाया पड़े बहुत से काज जी॥

सुन आवाज तारा का धक् धक् करने लगा कलेजा।
बोली–स्वामी! मैंने तो नहीं कही उसे है भेजा जी॥

देख रहा मैं कई दिनों से घर में मन नहीं लगता।
जब देखो तब घर के बाहर बार बार वह भगता जी॥

शैतान बच्चे जो इस मौहल्ले के उनके साथ है रहता।
बच्चा समझ कर ही मै तुझको कुछ भी नहीं हूँ कहता जी॥

ब्राह्मण सुत यह सुनकार बोला बात मानलो तात।
लात मार घर बाहर करदो रहे माँ के साथ जी॥

बच्चा है बच्चा बेटे! यह समझ एक दिन जाये।
थोड़ा और बड़ा होने दो, काम हमारे आये जी॥

पाँव पूत के पलने में ही नजर लगे हैं आने।
काली काली आंखे मुझको वह तो लगा दिखाने जी॥

दासी यह सर्पिणी के जैसी इसका पूत सपोला।
माँ दासी है दास नहीं मैं, एक दा मुझसे बोला जी॥

अच्छा आने दो उसको मैं खबर आज ही लूंगा।
मालिक को अनुचित कहने का उचित दंड मैं दूंगा जी॥

इधर निकल कर घर से रोहित नगरी बाहर आये।
गंगा की धारा के संग संग चला दूर वह जाये जी॥

कदली फल अमरूद, आम तरु देख रोहित हर साये।
सीता फल, चीकू, जामुन लख पानी मुँह में आये जी॥

चढ़ तरु पर रोहित ने तो पके पके फल तोड़े।
मधुर मधुर फल खाये उसने कच्चे कच्चे छोड़े जी॥

गंगा का जल पीकर उसने अपनी प्यास बुझाई।
खाते खेलते हुए यों वन में दिया दिवस बिताई जी॥

चलना चाहिए अब तो घर पर सोचे रोहित मन में।
आज तो पूरा ही दिन निकला मेरा तो इस वन में जी॥

उठा सके उतने फल उसने झोली में हैं डाले।
गोल गोल अमरूदों को वह कन्दुक वत् उछाले जी॥

इधर चिंता से व्याकुल तारा अब तक भी नहीं आया।
कहाँ गया होगा रोहित मम मन उसका अकुलाया जी॥

बार बार द्वार आ देखे अब आये अब आये।
ज्यों ज्यों दिनपति ढलता जाता धड़कन बढ़ती जाये जी॥

माँ की ममता ऐसी ही होती है जग में भाई।
सुबह से देखा नहीं सुत को नयन उदासी छाई जी॥

इतने में फल लिए झोली में रोहित घर पर आया।
देखो माँ फल ये कितने मृदु तेरे हित मैं लाया जी॥

झट तारा ने सस्नेह सुत को सीने से चिपकाया।
कहाँ गया दिनभर बेटे! क्या पीया क्या खाया जी॥

मधुर मधुर फल खाये माता पीया गंगा नीर।
दिनभर रहा खेलता मैं तो उत्तम गंगा तीर जी॥

वन की शोभा निहार माता हुआ मैं हर्ष विभोर।
फल फूलों से लदी डालियाँ नृत्य करे कई मोर जी॥

लाल! मेरे क्यों गया तूं वन में भय मेरे मन छाये।
शेर, व्याघ्र, भालू, अहि, अजगर रहते घात लगाये जी॥

मैं अकेला नहीं हूँ माँ! वहाँ और कई जन फिरते।
क्षत्रिय सुत हूँ डरुं क्यों उनसे वे भी जब नहीं डरते जी॥

भय की बात क्या वन में माता बड़ा ही आनन्द आता।
प्रकृति गोद में बेठ खेल माँ दुख भी है भग जाता जी॥

बड़ा ही प्यारा दृश्य प्रकृति का मुझे तो आनन्द आया।
नहीं शोरगुल जरा भी वहाँ पर शान्त सभी को पाया जी॥

कहना तेरा सत्य है बेटा! पर भय मेरे उर छाये।
तारा की आँखों का तारा कहीं नहीं खो जाये जी॥

चिन्ता ऐसे करो न माता लो ये मृदुफल खाओ।
होनी होके रहेगी शंका व्यर्थ न मन मे लाओ जी॥

मुझे नहीं खाना तुम खालो, स्वामी को भी खिलाओ।
खुश होंगे फल पाकर वे जाओ उन्हें दे आओ जी॥

शोषण किया जिन्होंने हमारा, भूखा सदा सुलाया।
श्रम का फल उनको दे दूं माँ! अच्छा पाठ पढ़ाया जी॥

सुनते ही आवाज रोहित की ब्राह्मण सुत वहाँ आया।
अरे मूर्ख! कहाँ गया था दिन भर रोष में भर चिल्लाया जी॥

वन में गया था स्वामी सुत! मैं मीठे फल ये लाया।
करना चाहिए काम सभी को करके वही दिखाया जी॥

इच्छा हो तो आप भी खालो सबके लिए मे लाया।
यों कह करके रोहित ने तो आगे हाथ बढ़ाया जी॥

विप्र पुत्र कहे मुझे न खाना नजर न मेरे आओ।
खैर चाहते हो अपनी तो सीमा बहि न जाओ जी॥

मन तो करता दांत तोड दूं पर वश नहीं चल पाये।
बड़ बड़ करता ब्राह्मण सुत वह अपने कक्ष में आये जी॥

हंसता हुआ रोहित भी अपनी कुटिया में है आया।
फल थे हाथ में उसके अब भी आ माँ को हाल बताया जी॥

मुझे नहीं परवाह उसकी है क्या वह करेगा मेरा।
अधिक जमाया रोब अगर तो अलग डालूंग डेरा जी॥

अब तो प्रतिदिन जल्दी उठकर रोहित वन में जाये।
ब्राह्मण सदा खीझ रह जाता जोर नहीं चल पाये जी॥

गली मौहल्ले के बच्चो भी जाने लगे है साथ।
नायक बनकर रोहित उनका सदा बढ़ाता हाथ जी॥

घंटों गंगा तट पर खेले बच्चो प्रेम से खेल।
है सहयोग भावना पूरी अनुपम उनमें मेल जी॥

दोहे

काम न बनता देखकर, सुर यों करे विचार।
अगर चलित ना कर सका, है सुरत्व धिक्कार॥

राज्य गया खुद भी बिका, फिर भी नहीं मलाल।
हताश मैं भी ना बनूं, नई चलूंगा चाल॥

पूर्ववत्

यह रोहित इस वन में निशदिन फल लेने को आये।
क्यों न इसी को बना के माध्यम अपना तीर चलाये जी॥

यही सोच उस दुष्ट देव ने ऐसा चक्र चलाया।
रोहित घूमा सारे वन में फल न एक भी पाया जी॥

कल तक लदे हुए थे पादप मिष्ट फलों से सारे।
कच्चे भी नहीं देते दिखाई किसने सभी उतारे जी॥

साथी सारे ढूंढ़ ढूंढ़ फल हो गए थक कर चूर।
कुछ बोले हम घर जायेंगे लगी भूख भरपूर जी॥

रोहित चलो चलो अब भाई! घर जाकर कुछ खाये।
बड़ी जोर से भूख लगी है, सहन नहीं हो पाये जी॥

बिना लिए फल मैं नहीं जाऊं, जाना तुम्हें तो जाओ।
आगे जाकर और ढूढूंगा इच्छा हो तो आओ जी॥

हमें नहीं जाना है आगे तुम ही जाओ भैय्या।
बहुत देर हो गई आज तो हमें मारेगी मैय्या जी॥

एक एक कर चले गये सब रोहित रहा अकेला।
यह माया भी सुर की जिसका भूप प्रति मन मैला जी॥

क्षुधा से व्याकुल था ही रोहित करता चले विचार।
दिन पूरा ही निकल गया पर मिला न कुछ आहार जी॥

आज प्रकृति क्यों रूठी हुई है समझ नहीं मैं पाया।
भूख के कारण शिथिल हो रही मेरी तो यह काया जी॥

चलना भी जब लगा मुश्किल तो सोया तरु तल आकर।
इतने में फल गिरा आम का मुदित हुआ मन पाकर जी॥

अरे प्रकृति माँ ने लगता है दिया मुझे करुणा कर।
तो फिर भूख मिटा लूं अपनी इस फल को मैं खाकर जी॥

इधर उधर से देखा फल को फिर रोहित ने खाया।
बड़ा ही मीठा लगा यह फल तो प्रथम बार ही पाया जी॥

अगर हो जाता हताश तो मै नहीं यहाँ तक आता।
नहीं आता तो ऐसा फल भी नहीं कभी मैं पाता जी॥

क्षुधा से राहत मिली रोहित को जी में जी है आया।
तभी याद आई माँ की तो मन उसका मुरझाया जी॥

अरे खा गया आम अकेला ध्यान न मुझको आया।
इंतजार कर रही होगी माँ, अब तक जा नहीं पाया जी॥

बहुत हो गया विलम्ब लेकिन फल लेकर ही जाऊं।
खाली हाथ तो घर जाते मैं मन ही मन शरमाऊं जी॥

फल ऐसे मीठे खा निश्चित हर्षित होगी माता।
वृक्ष ढूंढ कर वैसे फल मैं अभी तोड़कर लाता जी॥

सूरज भी ढलने वाला है शीघ्र तोड़ फल लाऊं।
साथी दूर गये नहीं होंगे जाकर उन्हें बताऊं जी॥

यही सोचकर उठा वह रोहित लगा ढूंढने तरुवर।
चला कदम कुछ ही कि देखा विटप एक फल धर जी॥

लदा आम से पूरा ही वह देख रोहित हरसाया।
निकट पहुँच कर चढ़ने लगा तो सर्प नजर एक आया जी॥

काला था वह नाग भंयकर मार रहा फुफकार।
मानो मधुरिम आम्र वृक्ष पर उसका हो अधिकार जी॥

कभी देखता फलों को रोहित कभी देखता नाग।
उगल रहा वह विषधर मानो रोहित ऊपर आग जी॥

फन फैलाकर फणिधर वह तो रोहित का पथ रोके।
मत चढना इस तरुवर पर मानो वह तो टोके जी॥

अरे नाग! पथ छोड़ मेरा ऊपर चढने दे मुझको।
सुबह से भूखा फल लेने दे, विनती करता तुझको जी॥

हटा नहीं जब व्याल वहाँ से रोहित करे विचार।
क्यों न अन्य मार्ग से अपनी इच्छा करुं साकार जी॥

मैंने वीरता की ही शिक्षा माता से है पाई।
तभी अकेले ही वन में आने की हिम्मत आई जी॥

रोहित बोला बैठो विषधर मैं न बैठ अब पाऊं।
सीधा ही मैं पकड़ प्रशाखा पादप पर चढ़ जाऊं जी॥

निर्भय हो आराम करो तुम करुं मैं अपना काम।
जल्दी जल्दी फल तोडूं मैं होने वाली शाम जी॥

इतना कह कर डाल पकड़ जैसे ही पाँव उठाया।
उछल के उस विषधर ने तत्क्षण विषमय दंश लगाया जी॥

गिरा भूमि पर माँ माँ कहते और न कुछ उच्चारा।
ऊंचे स्वर की चीख से गूंजा वन प्रान्तर वह सारा जी॥

सुना दूर जाते बच्चों ने रोहित यह हमारा।
क्यों चींखा क्या बात हुई है चलके देखें नजारा जी॥

घटना घटित हुई क्या उस संग दौड़ दौड़ सब जाये।
अन्य व्यक्ति जो इधर उधर थे वे भी चल वहाँ आये जी॥

होश भूलते ध्यान रोहित को एक यही था आया।
मात तात को दास जीवन से मुक्त देख नही पाया जी॥

बड़ी तमन्ना थी मन में कि कुछ और बड़ा होने पर।
मात तात को मुक्त करुंगा ऋण मैं सभी चुका कर जी॥

लेकिन मन की मन में लेकर हाय! मरा में जाऊं।
अन्तिम क्षण में मात तात के चरण नहीं छू पाऊं जी॥
हे भगवन्! शक्ति देना, हिम्मत उनमें तो आये।
पुत्र-विरह का भारी दुख यह मात तात सह पाये जी॥
कहते कहते मुंद गई आंखें फैल गया विष तन में।
मुर्दे सा बन पड़ा हुआ है वह रोहित उस वन में जी॥
आने वालों ने देखा कि नीली पड़ गई काया।
डसा सर्प ने इसको शायद यह अनुमान लगाया जी॥
सचमुच कोई महा विषैला सर्प यहाँ है भाई।
जिसके कारण इस बालक पर यह विपदा है आई जी॥
इधर उधर सब लगे देखने नजर व्याल वह आया।
देख भंयकर काला विषधर भय उनके मन छाया जी॥
बोला एक रे! वृक्ष पास में कोई नहीं तुम जाओ।
वरना इस बालक जैसे ही अपनी दशा बनाओ जी॥
किसका है यह प्यारा बच्चा, इधर कैसे है आया।
आया क्या लगता है काल ने इसको यहाँ बुलाया जी॥
बच्चे बोल उठे सारे ही विप्र दासी जो तारा।
उसी का सुत है यह बालक तो नाम रोहित है प्यारा जी॥
अच्छा तो फिर जाओ बच्चो! खबर उसे दे आओ।
सूरज भी घर गया है अपने बुला उसे तुम जाओ जी॥
बालक दौड़ पड़े सुनते ही चले नगर में आये।
पण्डित जी! ओ पण्डित जी!! कहाँ तारा हमें बताये जी॥

ब्राह्मण सुत बाहर आ बोला-क्या उससे है काम।
डसा सर्प ने रोहित को वह ले रहा माँ मॉ नाम जी॥

बड़ा भंयकर है वह विषधर बचने की नहीं आस।
सूचित करने हम आए कहीं टूट न जाये सांस जी॥

पुलक उठा सुन विप्र पुत्र वह अच्छी सूचना लाये।
कह दूंगा में उस तारा को आप लौट सब जाये जी॥

मन ही मन खुश हुआ विप्रसुत निकल गया है कांटा।
अकड़ सारी अब निकल जायेगी अच्छा नाग ने काटा जी॥

बालक बोले नहीं नहीं हम खुद ही उन्हें बताये।
माता तारा! माता तारा! कहॉ आप यहॉ आये जी॥

सुनकर अपना नाम तारा भी त्वरित बाहर है आई।
बेटे! बात हुई क्या ऐसी क्यों पुकार मचाई जी॥

माताजी रोहित को वन में काटा नाग ने आकर।
बच भी पाये या नहीं पाये देखो आप वहॉ जाकर जी॥

गिरी धरा पर धम से तारा सुन न सकी वह बात।
हा रोहित! हा लाल! मेरे कह मूर्च्छित वह हो जात जी॥

पण्डित जी जो किसी काम से गए हुए थे बाहर।
लौट के देखा भीड़ लगी है बोले वे घबरा कर जी॥

अरे भीड़ क्यों जमा यहॉ बेहोश पड़ी क्यों दासी।
बात हुई क्या बोले वे चेहरे पर लाके उदासी जी॥

डसा सर्प ने इनके सुत को यह कहने हम आये।
लेकिन ये तो सुनते ही बस गिर मूर्च्छित हो जाये जी॥

देख दासी को मूर्च्छित वन में विप्र विचार है लाये।
पुत्र शोक में मरी अगर यह मुद्रा डूब मम जाये जी॥

प्राय: मतलब की यह दुनिया है मतलब से नाता।
कोई किसी का दर्द न बांटे, इक रोता इक गाता जी॥

विप्र दौड़ भीतर जा जल्दी जल का लोटा लाया।
छिड़का जल तारा के मुख पर होश उसे तब आया जी॥

बिन पानी ज्यों तड़फे मछली, लगी तड़फने तारा।
हाय! घटा काली लाई है कैसा यह अंधियारा जी॥

अरे खबर ही लाये क्यों तुम उठा उसे ही लाते।
कहीं काल की गोद न सोये वहाँ पर जाते जाते जी॥

रोते रोते बोली स्वामी! सुत को यहाँ ले आओ।
पता न हालत होगी कैसी, उसको आप बचाओ जी॥

ब्राह्मण सुत चिल्लाकर बोला कहा था कितनी बार।
मत इसको बाहर जाने दो, अधिक छूट बेकार जी॥

लेकिन तब तो मेरी बात पर तनिक किया नहीं गौर।
अब रो रो कर व्यर्थ में तुम यों मचा रही हो शोर जी॥

सबको मरना एक दिवस तो अमर न हो कोई आया।
नई बात क्या हुई तेरे संग जो तूफान मचाया जी॥

काल के आगे चला कभी क्या किसी प्राणी का जोर।
मुझे न अच्छा लगता है यह बिन मतलव का शोर जी॥

कौन सा टूट पहाड़ गिरा जो इतना हल्ला मचाया।
मुझे तो तेरा यह नाटक ना किंचित् भी सुहाया जी॥

मरे के संग भी मरा क्या कोई अगला कर तूं ध्यान।
चारपाई आंगन में बिछादे आ रही मुझे थकान जी॥

शब्द एक एक जो निकला था विष बुझा वह तीर।
दिल के टुकड़े टुकड़े करता वज्राहत सी पीर जी॥

व्याकुल प्राण तारा के तन से चाहे वहाँ निकलना।
लेकिन अभी कहाँ है भाई दुख रजनी का ढलना जी॥

स्वामी! दासी आप चरण की इतनी सी दया दिखादो।
वैद्य, हकीम मंत्र वेत्तादि कोई आप बुलादो जी॥

विप्रपुत्र वह बोला चींखते छोडो यह बकवास।
मरे हुए का उपचार न कोई छोडो अब सब आश जी॥

निष्ठुरता यह देख स्वामी की तारा हुई हताश।
सोचे मन में इनसे तो है नही जरा सी भी आश जी॥

बोली बच्चो' पथ उस वन का तुम ही मुझे बतादो।
कहाँ पड़ा है रोहित मेरा, चल तुम ही दिखलादो जी॥

बोले बच्चे पूर्व दिशा में चली आप तो जाओ।
बेटे! मैं नहीं राह जानती तुम ही चल बतलाओ जी॥

बालक साथ हुए तारा के बात मान कर उसकी।
थर थर काया कांप रही है रो रही भर भर सिसकी जी॥

चलते चलते पहुँच गई जहाँ पुत्र पड़ा बेहोश।
वृक्ष तले लख सुत को तारा भूल बैठी खुद होश जी॥

कुछ पल बाद होश जब आया चीखी जोर से तारा।
झर झर झरे नयन निर्झर सी बहे अश्रुकी धारा जी॥

उठा पुत्र को लिया गोद में सीने से चिपकाया।
इक पल मानो घोर अंधेरा नयनों आगे छाया जी॥

लाल! मेरे क्यों बोल रहा नहीं धारण की क्यों मौन।
ऑखें खोलकर देख जरा तो बैठी पास में कौन जी॥

कितनी मैं तो तुम से आशा लगा बैठी थी बेटे।
गगन धरा सब एक हो गए तुझे देख यों लेटे जी॥

कभी हाथ, सिर कभी चूम कहे लाल ऐसे क्यों सोया?
मुख से भी कुछ बोल रहा नहीं किन सपनों में खोया जी॥

पूर्व जन्म में पता न मैंने किए कौन से पाप।
जिनके कारण सहने पड रहे नये नये संताप जी॥

एक बार तो लाल मेरे तुम अपनी आंखे खोलो।
इस दुखियारी जननी से तुम कुछ तो बेटे बोलो जी॥

मौन पडा यों देख तुझे तो मेरा हृदय है फटता।
जगह छोडकर बार बार मेरा तो कलेजा उठता जी॥

खड़े हुए जो लोग वहाँ थे रुदन देख नहीं पाये।
सुन विलाप तारा रानी का अश्रु उनके आये जी॥

कुछ लोगों ने छू बालक को कहा न इसमें प्राण।
लगता सर्प दंश से इसका हो गया है कल्याण जी॥

ऐसा तुम मत बोलो भाई! मेरा तो यह प्राण।
जानो तो उपचार बताओ, मानूंगी एहसान जी॥

अरे बहन! निष्प्राण यह तो अब कैसे जी पाये।
अन्तिम क्रिया करो इसकी बस और न उपाय दिखाये जी॥

इधर देव को इतना कर भी हुआ नहीं संतोष।
तीर न मेरा लगा अभी तक यही है उसको रोष जी॥

बन के क्रूर उस दुष्ट देव ने ऐसा रंग दिखाया।
निकट खड़े थे जो रानी के मन उनका पलटाया जी॥

एक एक कर लगे खिसकने वहाँ से तत्क्षण लोग।
रोके पर नहीं रुके एक भी कैसा बना संयोग जी॥

धीर-धीरे चले गये सब रही अकेली तारा।
अमा की रजनी ने भी आचल अधुना पूरा पसारा जी॥

क्या बीती उस पल तारा पर कलम भी आंसू बहाये।
वन में बैठी रात अंधेरी बादल फिर है छाये जी॥

बीच अनेकों के जो रहती वही तारा महारानी।
सुत शव लेकर बैठी वन में अजब कर्म कहानी जी॥

कभी देखती वह निज सुत को कभी पौंछती आँख।
हाय! कर्मों ने जीवन मेरा बना दिया है राख जी॥

जन्म कुण्डली में तो तेरे लिखा है करना राज।
फिर क्यों बेटे! चिर निद्रा में सोये हुए तुम आज जी॥

मिलन होगा, जब तेरे तात से क्या बोलूंगी बोल।
अरे जाग तू लाल मेरे अब हृदय रहा है डोल जी॥

मेरे मन नभ भास्वर भास्कर! स्वर्ग सुनहरे प्यारे।
आश-भाल के दिव्य तिलक हे! हे आंखो के तारे जी॥

नयन ज्योति हे हृद्स्पंदन! मुझ प्राण दीप के स्नेह।
मुझे छोड़ कहाँ जाओ लाल हे! मन सावन के मेह जी॥

गोदी में सुत सोया हुआ है तारा करे विलाप।
है अरण्य रोदन उसका तो सुने न कोई प्रलाप जी॥

कान लगा कर सुने वह धड़कन शायद लौटे प्राण।
सुनके रुदन कोई सुर आ मेरे सुत को दे त्राण जी॥





दशम किरण

हर्षित श्मशान

मावस की काली निशा, तम छाया हर ओर।
झिंगुर की आवाज या वनचर का फिर शोर॥

बादल के कारण बनी और भंयकर रात।
अब न दिखाई देत है वहाँ पसारा हाथ।

रह रह करके बिजलियां चीर रही आकाश।
बने जुगुनु अंगार सम, उड़ उड़ करे प्रकाश॥

तारा नभ में ताकती नजर न तारा आय।
उठा नयन तारा वहाँ, सीने से चिपकाय॥

पूर्ववत्

सुत के शव को उठा के तारा चली है मरघट ओर।
तमस भरी उस काली निशा में घटा मचाये शोर जी॥

ठोकरे खाती बढ़ रही आगे वन में तारा रानी।
हाय! दिवस यह पड़ा देखना गिरे नयन से पानी जी॥

रह रह तडित्प्रभा[१] पथ को आलोकित वहाँ बनाये।
मानो दया द्रवित हो उसको वह तो मार्ग सुझाये जी॥

१ – बिजली

सोचे तारा स्वार्थ भरे इस जग में कोई न मेरा।
मुख भी सुत का देख न पाऊं कैसा घोर अंधेरा जी॥

जिस ब्राह्मण के हाथ बिकी मैं वह भी निष्ठुर निकला।
हृदय विदारक दृश्य देख भी हृदय न उसका पिघला जी॥

दासी रूप में रह उसके घर कितना कष्ट उठाया।
लूखा सूखा ठण्डा बासी दिया वही बस खाया जी॥

अर्धभूखी रह कर भी मैंने किया था पूरा काम।
लेकिन दुख में साथ देने का लिया न उसने नाम जी॥

और तो और सांत्वना तक का शब्द एक नहीं फूटा।
कोई नहीं दुनिया में अपना सचमुच जग ही झूठा जी॥

अपने अपने स्वार्थ प्यारे हैं इस जग में तो सबको।
अपनी अपनी रोटी सेके किससे मतलब किसको जी॥

मेरे ही कर्मों का फल है किस पर दोष लगाऊं।
किया था जैसा पूर्वजन्म में वैसा ही फल पाऊं जी॥

रोती विलखती आखिर मरघट तक आ पहुँची तारा।
विद्युत् उजियारे में देखा उसने अजब नजारा जी॥

अर्धजले कंकाल पड़े हैं बदबू उनकी आये।
बूंदाबांदी के कारण वे पूरे नहीं जल पाये जी॥

इधर उधर बिखरी खोपड़ियां मानो हंसी उड़ावे।
राजा रंक, योगी भोगी सब आखिर यहीं है आये जी॥

रक्त मांस जलन की गंध से तारा तो उकताई।
तभी शृगालों का स्वर उसको दिया दूर सुनाई जी॥

अर्ध दग्ध एक लाश खींच श्रृगाल सामने आये।
हाथ, पॉव, मुख, पेट आदि वे चीर चीर कर खाये जी॥
जम्बुक छोड जिन्हें जाते आ श्वान उन्हें तो खाये।
गिद्ध डाल पर बैठे बैठे अपने पर फैलाये जी॥
देखा सियारों ने बिजली में आ रही कोई नारी।
कब कर का शव रखे भूमि पर खाने की करें तैयारी जी॥
देख झुण्ड जम्बुक का तारा झुक कर लकडी उठाये।
ताकि, फैंक श्रृगालों पर वह उनको दूर भगाये जी॥
अस्थि खण्ड था जिसको उसने लकडी समझ उठाया।
फैंका जोर से चीख तारा ने रक्त मांस युत पाया जी॥
अरे दया कर कोई मेरे सुत को आओ बचाओ।
छीन लेंगे ये मेरे लाल को शीघ्र दौडकर आओ जी॥
उधर दूर कुछ हरिश्चन्द्र नृप हरिजन के बन दास।
मरघट की रखवाली करते दण्ड रखे नित पास जी॥
सघन वृक्ष के तले फूस की टपरी में वे रहते।
सुनने वाला कोई न उनकी बात स्वयं से कहते जी॥
अच्छा हुआ यह महारानी ने ब्राह्मण का घर पाया।
अद्भुत प्रेम है पति के प्रति जो राजसी सुख ठुकराया जी॥
कई दासियॉं हरपल हाजिर हर कोई हो काम।
आज वही दिनभर श्रम करती बिना लिए विश्राम जी॥
आदर्श त्याग है उस तारा का कह न सकूं मैं मुख से।
आंखों में नैराश्य न झलका पीडित भले ही दुख से जी॥

प्यारा रोहित नयन सितारा कष्ट वह भी पाये।
राजकंवर हो कर भी वह तो दासी सुत कहलाये जी॥

लेकिन यही खुशी है मुझको नहीं वह परतंत्र।
बड़ा होने पर हमें करेगा निश्चित ही स्वतंत्र जी॥

एक बार भी देखा न बेटे! यहाँ आने के बाद।
अकुलाहट उत्पन्न हुई है, आई सुत की याद जी॥

माँ की सेवा में रह बेटे! अपना धर्म निभाना।
आशीर्वाद मेरा है तुझको निज जीवन महकाना जी॥

नगर में था तब तो उनसे मिलने के थे आसार।
लेकिन अब तो सपनों में ही देखूंगा दीदार जी॥

तभी चीख ने भूपति का तो किया ध्यान है भंग।
अरे कौन रजनी में रोता, फड़का बाया अंग जी॥

यह तो स्वर नारी का लगता अरे कौन यहाँ आई।
निशा अंधेरी घटा चढी कुछ देता नहीं दिखाई जी॥

आवाज सहारे बढा भूपति चला उधर ही जाये।
तभी तडित् ने किया उजाला नारी नजर है आये जी॥

श्वान, शृगालों को देखा तो दृश्य समझ में आया।
यष्टि घुमाकर उन सबको ही नृप ने दूर भगाया जी॥

अरे कौन तुम चीख रही क्यों बात, है क्या दुखदाई।
इतनी रात गये मरघट में कैसे अकेली आई जी॥

चौंकी तारा स्वर सुन नर का रुका रुदन चीत्कार।
धड़क-धड़क कर लगा धड़कने दिल उसका उसबार जी॥

दमक दामिनी ने इतने में तम का तोड़ा ताला।
लट्ठ हाथ में लिए दिखाई दिया व्यक्ति एक काला जी॥

विशाल वक्ष लम्ब चौड़ा तन बढे श्मश्रु के वाल।
यष्टि टिकाते हुए रहा चल धीमी धीमी चाल जी॥

देख भयावह रूप सामने इकपल वह घबराई।
लेकिन हिम्मत रख बोली ला बोली में कड़काई जी॥

अरे कौन तुम! किसने बुलाया मेरे पास क्यों आये।
औघड़ तुम लगते हो मुझको मुर्दो को जो खाये जी॥

इतने पशु भी छीन न पाये मेरे सुत को कर से।
भूल जाओ तुमको दे दूंगी लाल मेरा मैं डर से जी॥

लगा सीने से सुत को बोली हाथ न इसके लगाओ।
भला हसी में तुम्हाग औघड़ दूर चले बस जाओजी॥

औघड़ मैं तो नहीं हूँ भद्रे! हूँ मरघट रखवाला।
कर लेकर मुर्दे जलवाता क्यों मन मैं भय पाला जी॥

इतनी भीषण काली रात में कैसे अकेली आई।
मध्यरात वह भी मरघट में सोच न कुछ क्यों पाईजी॥

सोचे तारा यह स्वर तो लगता जाना पहचाना।
स्वामी सी आवाज यह तो पर मन ने नहीं माना जी॥

हरिजन के घर निवास उनका यहाँ कैसे हो सकते।
मन में हरपल बसे हुए सो वे ही वे ही दिखते जी॥

कुछ भी हो बातों से तो ये सज्जन देते दिखाई।
तो फिर अपना दर्द बताऊं शायद ले वे बटाई जी॥

बोली तारा ओ दयालु! देखो यह मम लाल।
दुष्ट नाग ने काटा इसको ले गया काल के गाल जी।

विष नाशक यदि मंत्र कोई भी जानो शीघ्र सुनाओ।
आजीवन उपकार न भूलूं सुत को आप बचाओ जी।

भद्रे! मंत्र न जानूं मैं कह छूआ है बालक हाथ॥
नब्ज देख कर के नृप बोला तज गया यह तो साथ जी।

व्यर्थ बात में सार नहीं है, आशा अब सब छोडो॥
बना यात्री परलोक का यह तो, नाता इससे तोडो जी।

यह संसार ऐसा ही भद्रे! वृद्ध, युवा, हो बाल।
काल निमंत्रण जब भी आये कौन सके है टाल जी॥

है ध्रुव सत्य जगत का भद्रे! बनता वह बिगड़ता।
पतझड अपने पाँव पसारे वगिया रूप उजड़ता जी॥

जीवन शाश्वत नहीं किसी का आने वाला जाये।
नहीं जरूरी सभी सुमन यहाँ रूप फलों का पाये जी॥

भद्रे ! अन्तिम संस्कार कर अपना फर्ज निभाओ।
प्रकृति भी प्रतिकूल हो रही मत अब देर लगाओ जी॥

बादल उमड़ रहे हैं वर्षा कहीं नहीं हो जाये।
अगर हुई तो मुश्किल होगा इसे जला नहीं पाये जी॥

टप टप लगे टपकने अश्रु रोने लगी फिर तारा।
हाय! जलाने सिवा रहा नहीं और कोई चारा जी॥

अगर भाग्य में यही लिखा मैं जीवित देख न पाऊं।
तो लो इसे जला दो जल्दी लाल तुम्हे संभलाऊं जी॥

हरिश्चन्द्र कहे जला तो दूं पर टका प्रथम एक पाऊं।
सूखी लकड़ी बदले में दे फिर मैं इसे जलाऊं जी॥

कुछ भी नहीं है देने को इस वक्त मेरे तो पास।
दया करो हे दयालू! बोली ले वह लम्बी सांस जी॥

यह तो भद्रे! कभी न होगा स्पष्ट तुम्हें बतलाऊं।
स्वामी की है सख्त मनाही टका न जो मैं पाऊं जी॥

एक टका कर सब ही लेते, जहां कहीं भी जाओ।
टका दिये बिन इस काशी में जला नहीं तुम पाओ जी॥

कौन मेरा है इस दुनियाँ में टका जो देता हाथ।
सुत पर आश लगाये बैठी तजा उसी ने साथ जी॥

पति विहीना लगती भद्रे! दया मेरे उर लाऊं।
पर स्वामी की बिन आज्ञा मैं कैसे कदम उठाऊं जी॥

अरे अरे ऐसा मत बोलो मैं हूँ सधवा नारी।
आज साथ नहीं स्वामी मेरे यह उनकी लाचारी जी॥

पितृहीन नहीं सुत मेरा पर है यह भाग्य की बात।
विशेष कारण है इससे वे नहीं है इस क्षण साथ जी॥

मम स्वामी की बात कहूँ क्या लाखों में वे एक।
सब कुछ छोड़ा धरा, धाम, धन सत्य की रखने टेक जी॥

कौन कहाँ है कंत तुम्हारा भद्रे! मुझे बताओ।
नहीं बतानी मुझे कहानी विवश न मुझे बनाओ जी॥

सुन यह भूपति मन ही मन में करने लगे विचार।
सत्य धर्म हित स्वामी गये हैं क्या इसका आधार जी॥

मेरी कहानी भी कुछ इससे थोड़ी थोड़ी मिलती।
कौन वह जिससे अन्तर में धर्म वर्तिका जलती जी॥

कहीं प्रिया तारा तो नहीं है, क्या यह रोहित प्यारा।
स्वर भी रानी जैसा ही है पूछूँ इसे दुबारा जी॥

भद्रे! क्या तुम हरिश्चन्द्र की महारानी हो तारा।
क्या यह सुत भी हरिश्चन्द्र का ही है हृदय दुलारा जी॥

देव ! आपने सत्य है जाना, जरा न इसमें झूठ।
काल ने आकर देखो मेरा भाग्य लिया है लूट जी॥

आप हो परिचित मुझ स्वामी से है यह खुशी की बात।
मुझे जलाने दो सुत को कहीं हो न जाये बरसात जी॥

इतनी मुझ पर कृपा करो तुम करो न टके की बात।
ऋण है आपका मेरे ऊपर दे दूंगी कल प्रातः जी॥

तभी चमक कर बिजली ने भी भ्रम की तोड़ी कारा।
अरे आप स्वामी ! मरघट में रोते बोली तारा जी॥

हां स्वामी! हां नाथ! कह वह लिपट स्वामी से रोई।
फूट पड़े अब हरिश्चन्द्र भी लाल दिया हा ! खोई जी॥

अभी अभी मैं बैठा बैठा विचार क्या क्या लाया।
हाय! कर्म ने उन सब पर ही पानी आज फिराया जी॥

प्रिये! मुझे विश्वास न होता होगा यह भी हाल।
असमय में ग्रास काल का बनेगा मेरा लाल जी॥

हा रोहित! हा लाल! मेरे यह दुख तो सहा न जाये।
मूर्च्छित हो गिर पड़ा भूपति तारा देख घबराये जी॥

उमड पड़ा दुःख का सागर ही बह गई अश्रुधारा।
फिर भी साहस धर स्वामी को सचेत करती तारा जी॥

ध्यान आते ही फिर से राजा करने लगा विलाप।
हाय! उदय में आये अपने किस भव के ये पाप जी॥

सुत क्या था तम मे उजियारा, मन उपवन का सुमन।
समाधान हर उलझन का अरु दिल की था वह धडकन जी॥

अश्रु में उल्लास वह था, सांसों में था सरगम।
लास्य वह अन्तर आंगन का जीवन का जय परचम जी॥

बड़ी बड़ी आशायें लगाई, बडा होगा सुत मेरा।
श्रम कर अपने दास भाव का तोड़ेगा वह घेरा जी॥

पर बेटे! अब ध्वस्त हो गया ख्वाबों का वो महल।
हमें तड़पता छोड जाने की क्यों की तुमने पहल जी॥

हा बेटे! हम झेल रहे दुःख सारे तेरे सहारे।
दुष्ट काल ने छीन तुझे कर दिये हमें दुखियारे जी॥

तारा भी अब सह न सकी है टूटा उसका धैर्य।
फूट फूट कर रोने लगी वह रख नहीं पाई धैर्य जी॥

स्वामी! अब जीवित रहने का रहा न कोई अर्थ।
सुत के बिना लगे मुझको तो जीवन सारा व्यर्थ जी॥

सच कहती हो तारा तुम अब किसके लिए है जीना।
जीवित रह करके भी केवल घूँट जहर के पीना जी॥

तारा बोली हे मृत्यु! तुम मुझको भी ले जाओ।
लाल मेरा जिस लोक गया है मुझे वहीं पहुँचाओ जी॥

सुत के पहले चिता मेरी तुम स्वामी करो तैयार।
सुत के बिन मैं जी न सकूंगी आप करे उपकार जी॥

सोचो नहीं मन में कुछ भी मत स्वामी देर लगाओ।
जीते जी अग्नि दे मुझको दुख से आप बचाओ जी॥

तभी ध्यान आया भूपति को मैं हरिजन का दास।
क्रय करली है उस हरिजन ने मेरी एक एक सांस जी॥

आत्म हत्या का यह चिन्तन तो धर्म से हमें डिगाये।
वैसे भी यह महापाप है ज्ञानी जन बतलाये जी॥

विश्वासघात है यह स्वामी से कभी न मैं कर पाऊं।
सुत का अन्तिम संस्कार हो तारा को समझांऊ जी॥

लिखा भाग्य में हुआ वही है, टाल कोई न पाये।
अश्रु पौंछ नृप बोला लाओ टका इसे जलाये जी॥

टका कहाँ से लाऊं स्वामी! नहीं पास में कौडी।
विप्रदासी बन जीऊं मैं तो करो विचारणा थोड़ी जी॥

कुछ भी हो कर देना पड़ेगा लिये बिना न जलाऊं।
मालिक का आदेश यही है ठुकरा उसे न पाऊं जी॥

सोचो स्वामी ! नहीं और का, सुत है यह तुम्हारा।
विवशता मेरी पहचानो चिंतन करो दुबारा जी॥

मुझे न चिन्तन कुछ करना है, नहीं विवशता मानूं।
धर्म स्वामी की आज्ञा पालन एक बात बस जानूं जी॥

पुत्र मेरा ही है तो क्या हो नियम नियम ही होता।
निज पर का नहीं भेद नियम में, करे वह खाये गोता जी॥

जिसके खातिर सब सुख छोड़े क्या वह धर्म भूला दूं।
अब तक के सत्कर्म सभी क्या मिट्टी में मिला दूं जी॥

नहीं नहीं यह कभी न होगा, है अन्तर आवाज॥
कर देकर ही करना होगा सुत का अन्तिम काज जी।

नाशवान है काया, माया, हर सम्बन्ध है नश्वर।
जग में सब कुछ ही है नश्वर धर्म ही एक अनश्वर जी॥

तो फिर मोह में पड करके क्यों धर्म छोड़ूं मैं अपना।
यह जीवन केवल सपना है व्यर्थ तदर्थ तपना जी॥

अतः छोड सब बातें दूसरी टका मुझे दो रानी।
बिना दिये कर जला न पाओ बात स्पष्ट लो मानी जी॥

बात सत्य है आपकी लेकिन टका कहाँ से लाऊं।
टका दूर पूरा भोजन भी यथा समय नहीं पाऊं जी॥

मैं भी कर क्या सकूं प्रिये! हा! है लाचारी मेरी।
कुछ भी हो कर देना होगा, करो न इसमें देरी जी॥

मैं मालिक नहीं दास हूँ रानी, मुझे है क्या अधिकार।
बात दूसरी मरघट में तो चलता नहीं उधार जी॥

स्वामी ही आ जाये भाग्य से दे दे यदि वे छूट।
तो वन सकता काम हमारा वरना सब है झूठ जी॥

अब क्या होगा सोचे तारा झरझर अश्रु बहाये।
हाय! मेरा है कौन जगत में जो उलझन यह मिटाये जी॥

समय! तुझे भी नमस्कार जो आज स्थिति यह आई।
सुत हेतु कर देने को भी नहीं पास है पाई

अश्रु पौछते हुए आंचल से आया अचानक ध्यान।
अरे साड़ी दे क्यो न समस्या का मैं करुं अवसान जी॥

बोली तारा नाथ! यह साड़ी टके बदले ले लो।
और पुत्र को अन्त्य क्रिया हित अपने अंक में झेलो जी॥

हाँ हाँ निर्णय उचित यह रानी! दुष्य फाड़ दे जाओ।
फिर न मुझे एतराज कोई तुम रोहित यहाँ जलाओ जी॥

अर्ध भाग साड़ी का फाड के ज्यो ही देती तारा।
अकस्मात् उस मरघट में तो हुआ दिव्य उजियारा जी॥

देव दुंदुभि बजी गगन में हुई पुष्प की वृष्टि।
हरिश्चन्द्र तारा रानी की चकाचौध हुई दृष्टि जी॥

ऊर्ध्वलोक से उतर उतर कर सुर सुरांगना आये।
धन्य धन्य हो हरिश्चन्द्र यों जय जयकार लगाये जी॥

दुष्ट देव जिसने ली नृप की पदे पदे परीक्षा।
हाथ जोड़ चरणों में गिर वह मांगे क्षमा की भिक्षा जी॥

क्षमा करो हे महाभाग! सच बुद्धि मेरी भ्रष्ट।
आप जैसे धर्मी को मैंने इतना दिया जो कष्ट जी॥

देवराज ने देवलोक में महिमा आपकी गाई।
लेकिन मेरे जैसे क्षुद्र को सहन नहीं हो पाई जी॥

करने आपको चलित धर्म से ली मैंने मन ठान।
क्योंकि मुझको देव शक्ति पर पूरा था अभिमान जी॥

सुवनिताओं को मैने ही भेजा धरती ऊपर।
ऋषि का आश्रम भी उजड़ाया मैंने ही हरसाकर जी॥

ऋषि की बुद्धि को भी मैंने ही तो भ्रमित बनाया।
सर्प रूपधर रोहित को भी मैंने दंश लगाया जी॥

घन घटायें उमड़ घुमड़ कर नभ में थी जो छाई।
माया से ही मैंने सारी महाराज प्रगटाई जी॥

काली निशा, वह भी मरघट नहीं कोई देखने वाला।
फिर भी आपने रहके अविचल धर्म हृदय से पाला जी॥

देव सृष्टि के समक्ष माना नर सृष्टि को तुच्छ।
लेकिन प्रथम बार पहचाना नर सुर से है उच्च जी॥

शचिपति ने सत्य कहा पर अहं न मेरा माना।
देख आपका निश्चय राजन्! सत्य तथ्य पहचाना जी॥

धन्य आपकी सहनशीलता धन्य धर्म पर दृढता।
धन्य धीरता, धन्य वीरता, धन्य त्याग व समता जी॥

धन्य धन्य है दान आपका धन्य दक्षिणा भाव॥
धन्य धन्य वह भूमि जहां पर धरे आपने पॉव जी॥

धन्य आपकी सद्आशयता जीवन धन्य तुम्हारा।
मेरे जैसा देव आज तो हे नृप! तुम से हारा जी॥

मेरा अहं किसी स्थिति में नहीं जो झुकने वाला।
आप कृपा से नष्ट हो गया मेरे मन का काला जी॥

धन्य धन्य है रानी को भी दुःख में साथ निभाया।
सन्नारी धर्मानुकूला सच करके दिखलाया जी॥

पावन मेरे नयन हो गये करके दर्श तुम्हारे।
तन भी पावन हो गया मेरा छूकर चरण तुम्हारे जी॥

बहुत बड़ा अज्ञान जो मैंने अब तक मन में पाला।
आप कृपा से नष्ट हो गया, हुआ हृदय उजाला जी॥

नर तन पाना सफल आपका मात तात तव धन्य।
धन्य धन्य महारानी को सहयोग दिया अनन्य जी॥

छू रोहित को मूर्च्छा उसकी देव वह तुरत हटाये।
जागा वह अंगडाई लेकर नृप रानी हरसाये जी॥

देव देवियां उसी समय तीनों को स्नान कराये।
दिव्य वसन आभूषण पहना सिंहासन पर बिठलाये जी॥

सच है घटा कौन सी ऐसी आकर जो नहीं जाये।
सुख दुःख आते ही रहते हैं सदा न वे रह पाये जी ॥





एकादश किरण

तिमिर अवसान

जीत सत्य की हो गई, करे देव गुणगान
हर्षित होकर देखता, काशीपुरी श्मशान।

पूर्ववत्

इधर कोलाहल सुन मरघट में काशी के जन जागे।
आलोक देख उत्कंठा वश वे निकल घरों से भागे जी॥

बना बना के झुण्ड नागरिक जा रहे हैं उस ओर।
मध्यरात मरघट में उतरी कैसी अद्‌भुत भोर जी॥

हरिजन ने भी सुना शोर मरघट में देखा उजाला।
उठ चला उस ओर डाल कंधे पर कंबल काला जी॥

पहुँच वहाँ देखा उसने तो अरे यह मम दास।
एक बार तो नयनों को नहीं हो पाया विश्वास जी॥

हाय! मुझे क्या मालूम कि ये हरिश्चन्द्र महाराज।
देवों की इस जय ध्वनि से पहचाना मैंने राज जी ॥

हाय ! स्वामी को दास बना मैं अनजाने घर लाया।
हुआ दुःख उस हरिजन को वह मन ही मन शरमाया जी॥

इधर भूप ने देखा दूर से मम स्वामी हैं आये।
उतर सिंहासन से तत्क्षण वे उनके पास है जाये जी॥

बोला नृपति स्वामी आपका मुझ पर महा उपकार।
आप कृपा से धर्म बचा मम सत्य रहा उच्चार जी॥

अगर आप क्रय नहीं करते तो बात न यह बन पाती।
देख रहे जो दृश्य आज हम घडियां वे नहीं आती जी॥

चरणों में गिर पड़ा वह हरिजन क्षमा करो महाराज।
नहीं बोलने लायक हूँ मैं आ रही मुझको लाज जी॥

मुझे ज्ञात नहीं था कि आप हो अवध राज्य सिरताज।
शर्म के मारे मेरी स्वामी! निकले नहीं आवाज जी॥

बडी फूहड़ थी मम घरवाली उसे न कुछ भी ध्यान।
बात बात में नाथ! आपका उसने किया अपमान जी।

मैं विवश था उसके आगे नहीं सेवा कर पाया।
दास मान मैंने मालिक से मरघट काम कराया जी॥

माता को मत दोष दीजिये अगर न मरघट आता।
तो क्या बना दृश्य आज जो वह कभी बन पाता जी॥

बडी कृपा मानूं उनकी जो मुझे यहाँ भिजवाया।
भिजवाया क्या सच में मेरा दुःख ही सब विर लाया जी॥

महाराज ने कर संबोधित सबको वृत्त सुनाया।
कैसे उनका धर्म बचा वह खोल रहस्य बताया जी॥

उधर सोचता ब्राह्मण मन में अब तक दासी न आई।
पुत्र शोक में मर न गई कहीं चिन्ता दिल में छाई जी॥

इतने में जोरों का शोरगुल उसको दिया सुनाई।
घर से बाहर आ पूछा क्यों कोलाहल यह भाई जी॥
वे बोले मरघट में हुई है बात अनोखी आज।
स्त्री सुत के संग प्रकट हुए हैं हरिश्चन्द्र महाराज जी॥
देव सभा वहाँ जुडी हुई है दर्शन को सब जाये।
हम भी दौड़े वहीं जा रहे देर न कहीं हो जाय जी॥
यह आवाज उसी की विप्रवर ! चलो हमारे साथ।
ब्राह्मण सोचे मन ही मन में अद्भुत यह तो बात जी॥
जो कुछ घटित हुआ मरघट में देख यह मैं आऊं।
दासी भी वहीं मिल सकती है पता लगाकर लाऊं जी॥
साथ हो गया उनके विप्र वह मरघट में है आया।
दृश्य देखकर वहाँ वह तो मन में अति पछताया जी॥
अरे यह दासी तो मेरी अवध पुरी महारानी।
हाय! मैं ने तो दिया कष्ट महा, बात न कुछ थी जानी जी॥
इधर तारा भी देख विप्र को उतर पास में आये।
चरणों में गिर पड़ा विप्र तो रानी उन्हें उठाये जी॥
अरे अरे यह क्या करते हो हो उपकारी आप।
मुद्रा पांच सौ दे के आपने हरा नाथ संताप जी॥
अगर मेरा क्रय करने का नहीं मानस आप बनाते
तो मम स्वामी कैसे अपना दिया वचन निभाते जी॥
बहुत बड़ी हूँ ऋणी आपकी आश्रय मैंने पाया।
रोहित ने भी विप्र चरण में अपना शीष नमाया जी॥

लगा सीने से रोहित को वह अश्रु विप्र बहाये।
बेटे! तुझको बहुत सताया मुझको क्षमा दिलाये जी॥

विप्र पुत्र की मन मलिनता भी लज्जित हो आई।
गिर चरणों में महारानी के क्षमा है उसने चाही जी॥

मुझ पामर ने आप दोनों को कष्ट दिया हा! कितना।
लेकिन उफ तक किया न किंचित् हूँ समझो पापी जितना जी॥

तारा बोली यही निवेदन शुभ जीवन अब जीये।
दुराचार से कर किनारा सदाचार रस पीये जी॥

बात आपकी शिरोधार्य है लेता शपथ मैं आज।
अब न करूंगा कभी भूलकर आगे कोई अकाज जी॥

महारानी ने उस ब्राह्मण का परिचय सबको कराया।
क्रीत दासी मैं बनी थी इनकी प्यार पिता सम पाया जी॥

अन्य श्रेष्ठी कई दृश्य देखने जो जो वहाँ पर आये।
अरे वे ही ये श्रमिक रूप में बोले ये कोई काम बताये जी॥

हमें पता क्या अवधपति ये श्रमिक ही हमने जाना।
तिरस्कार करके लौटाया रूप न यह पहचाना जी॥

सारे श्रेष्ठी गिर चरणों में अपनी भूल स्वीकारे।
क्षमा कीजिये महाराज हे ! थामें चरण तुम्हारे जी॥

दोष आपका नहीं है बन्धु! अपरिचय ही कारण।
लेकिन कहूँ बात एक जो करना दिल में धारण जी।

परिस्थिति वश हो घायल कोई आये आपके द्वार।
सहयोग देने की रखो भावना कर उनका सत्कार जी॥

विपदग्रस्त की जानो विवशता करो नहीं अपमान।
आप भी मानव वह भी मानव क्या कम यह पहचान जी॥

इतने में काशी नृपति भी परिजन संग वहां आया।
डाल गले मे गला मिले वे नयन नीर छलकाया जी॥

आप काशी में मुझे पता नही यह भी दुःख क्या कम है।
रह काशी में कष्ट उठाया इससे लज्जित हम हैं जी॥

ऐसा नहीं सोचिए राजन्! कहाँ आपका दोष।
पता न चलने दिया मैंने ही करे नहीं अफसोस जी॥

अगर ज्ञात हो जाता आपको दिन न आज यह आता।
इन्द्रादिक देवों के दर्शन भाग्य से ही नर पाता जी॥

काशी नृप ने सुरपति सहित सबको शीष नमाया।
भाग्य यह काशी नगरी का स्वर्ग उतर है आया जी॥

उधर अवध में प्रजाजनों से विश्वामित्र घबराये।
अच्छी आफत पड़ी गले में कैसे इसे हटायें जी॥

क्रोध के कारण ही जनमानस बना मेरे प्रतिकूल।
जानबूझ कर मैंने निज पथ में बोये यहाँ बबूल जी॥

देव पुरुष हैं हरिश्चन्द्र तो जान नहीं मैं पाया।
निष्कारण ही मैंने उनको बहुत ही यहाँ सताया जी॥

झूठे अहं के कारण प्यारी अवध प्रजा दुःख पाई।
जब से लिया राज्य भूप से जरा शांति नहीं आई जी॥

अतः भूप को लाऊं यहां जा राज्य पुनः संभलाऊं।
उलझन जो मैंने खुद पाली छुट्टी उससे पाऊं जी॥

यही सोच कर सचिव आदि को ऋषि ने बात बताई।
लेने नृप को ऋषि जा रहे सुन के प्रजा हरसाई जी॥

पूरे नगर में बात फैल गई झूम उठे नर नारी।
दुल्हन सी सुसज्जित की गई अवध पुरी ही सारी जी॥

विश्वामित्र भी चलते चलते काशी ओर हैं आये।
गंगा तट पर देख उजाला विस्मय मन में लाये जी॥

यह अद्‌भुत उजियाला कैसा स्वर्ग लोक के जैसा।
पहले जाकर इसको देखूं क्या है वहाँ पर ऐसा जी॥

जय हो जय हो हरिश्चन्द्र और जय हो तारा रानी।
जय ध्वनि सुन के विश्वामित्र की बढी और हैरानी जी॥

जल्दी जल्दी कदम उठाकर उसी स्थान ऋषि आये।
देख नजारा अद्‌भुत वहाँ का विश्वामित्र चकराये जी॥

रत्न जडित सिंहासन ऊपर बैठे राजा रानी।
खड़े सामने देव देवियाँ, इन्द्र और इन्द्राणी जी॥

हाथ जोड़कर बोल रहे थे सब ही जय जय कार।
सोच न पाये विश्वामित्र कुछ क्या है चमत्कार जी॥

अब तक थी जो मन में मलिनता क्षणभर में हो गई दूर।
ऋषित्व और तप का अहं भी पल में हो गया चूर जी॥

हरिश्चन्द्र ने ज्यों ही देखा विश्वामित्र जी आये।
स्त्री सुत के संग खडे हो गये शीष झुका मुस्काये॥

ऋषि चरण छूने को ज्यों ही झुके तीनों ही प्राणी।
रोक बीच में ऋषि ने तत्क्षण उच्चारी यह वाणी जी॥

धन्य धन्य है राजन् ! तुमको धन्य धन्य महारानी।
जब तक रवि शशि नभ में तब तक अमर तुम्हारी कहानी जी॥

मम बुद्धि पर राजन्! पड़ गया भ्रम का पर्दा काला।
शस्त्र अचूक समझ क्रोध को हर दम मैंने पालाजी॥

भ्रम था मुझे क्रोध के बल पर मैं हूँ शक्तिमान।
तप का तेज भी मेरे पास है जिससे मेरी शान जी॥

लेकिन मेरी तप शक्ति भी क्रोध से हो गई क्षीण।
मुनि होकर भी तभी तुम्हारे समक्ष आज मैं दीन जी॥

बिन कारण ही तुम्हें सताया दुःख मन में यह लाऊं।
क्षमा करो हे महाभाग ! मैं भूलों पर पछताऊं जी॥

धन्य आपका क्षमा भाव है, धन्य है आपका त्याग।
मेरा तो उद्धार हो गया क्रोध, अहं गये भाग जी॥

परिवर्तन यह देख ऋषि में चकित हो रहे सारे।
शेर गाय बन आज गया है बुझे क्रोध अंगारे जी॥

हरिश्चन्द्र बोले ऋषिवर! है आशीर्वाद तुम्हारा।
राज्य दान का अवसर देकर आपने मुझे उबारा जी॥

समय के रहते अगर दक्षिणा लेने आप नहीं आते।
तो क्या इस मरघट में हम सब देव दरस है पाते जी॥

बस अब तो रहने दो राजन्! मत मुझ पर भार चढाओ।
वैसे ही हूँ लज्जित ना शर्मिन्दा और बनाओ जी॥

मन ही मन खल रहा है मुझको मेरा दुर्व्यवहार।
शान्ति तभी मिलेगी मुझको बात करो स्वीकार जी॥

जब से आये आप काशी में पूरा अवध उदास।
आप साथ ही आ गया मानो जन मन का उल्लास जी॥

सबके दुःख का निमित्त बना मैं मुझको पश्चाताप।
पुनः राज्य ले अवध प्रजा का हरो आप संताप जी॥

भूप कहे हाथों से मैं ने राज्य दिया है मुनिवर।
मैं ही उसको ले लूं पुनः यह हो सकता क्या ऋषिवर जी॥

क्रोधावश में मुझको राजन् ! ध्यान नहीं रह पाया।
वरना राज्य चाहिए किसमें मैं खुद ही तज आया जी॥

रोष आपको हो सकता पर मुझे नहीं था क्रोध।
मैंने अक्रोध स्थिति में दिया था रहते बोध जी॥

ऐसी स्थिति में कैसे लेऊं दिया हुआ मैं राज्य।
दी गई वस्तु वमन सदृश ही सदा जगत में त्याज्य जी॥

तभी देव उठ कर बोला ऋषिवर दोष नहीं तुम्हारा।
जो कुछ किया आपने नृप संग वह सब भाव हमारा जी॥

देव शक्ति के बल पर मैंने इनकी बुद्धि फेरी।
तभी राज्य याचना में की नहीं इन्होंनें देरी जी॥

कुछ भी हो पर मैं तो ऋषि को दे चुका हूं दान।
ये परवश हो सकते हैं पर मुझे तो पूरा ध्यान जी॥

तभी सभी का ध्यान बटाते सुरपति बोला उठकर।
और बातें सब छोड़ दीजिये करेंगे हल हम मिलकर जी॥

चलके अवध में प्रजा भावना पहले लें हम जान।
जिसे भी चाहे जनता राजा उसी को लेंगे मान जी ॥

पड़ा सोच में महीपति अब मैं क्या दूं इन्हें जवाब।
चारों ओर से मेरे ऊपर बहुत बड़ा है दबाव जी॥

तभी ध्यान भूपति को आया हम तो हैं पर तंत्र।
अपने आप निर्णय लेने में दोनो नहीं स्वतंत्र जी॥

नृप बोला देवेश ! दास हम इनकी आज्ञा माने।
ये दोनों हैं स्वामी हमारे, अनुचर हमको जाने जी॥

चरण पकड़ दोनों बोले मत मरे को मारो नाथ।
शर सम वेध रहा है किया जो व्यवहार आपके साथ जी॥

ऐसा कह कर नमक जले पर मत छिड़को हे राजन्! ।
मुक्त आप है अभी से स्वामी ! नहीं है कोई बन्धन जी॥

समझ स्थिति शचिपति ने उनको किया बहुत धन भेंट ।
ब्राह्मण और हरिजन को धन दे बना दिया है सेठ जी॥

इन्द्र कहे फिर जब तक जग में सूरज चांद सितारे।
सत्य धर्म पालक नृप रानी नाम न कोई विसारे जी॥

कहे काशी नृप बनके अतिथि कुछ दिन यहीं बिताये।
तो मेरे आहत मन को तो राहत कुछ मिल पाये जी॥

हरिश्चन्द्र कुछ उत्तर देते इसी बीच में मुनिवर।
बोले पहले अवध में चलना होगा सुनिये नृपवर जी॥

हाथ जोड़ तब कहा भूप ने अभी अवध मैं जाऊं ।
इस नगरी से जुडा है नाता फिर कभी मैं चल आऊं जी॥

भूल भला क्या पाऊं काशी को प्रण मैं पाल यहाँ पाया।
प्रण पालन के कारण ही तो सुखद यह क्षण आया जी॥

देवराज ने दी आज्ञा देवों को चढ़े विमान।
समय बहुत हो गया हमें तो करें शीघ्र प्रस्थान जी॥

यह कहते ही प्रकट हो गया सुसज्जित एक विमान।
धवल हँस सा था वह सुन्दर आकर्षक अभिराम जी॥

बैठे सभी यान में तत्क्षण ले काशी से विदाई।
उडा गगन में यान उसी पल खुशी है सब मन माई जी॥

होते होते भोर सारे ही अवध पुरी में आये।
देख के आता यान अवध की प्रजा बहुत हरसाये जी॥

ऋषि गये नृप को लेने यही चर्चा चारों ओर।
सोचे सब अनुकूल ऋषि हों लौटेगी फिर भोर जी॥

रजनी पूरी इसी खुशी में बिन निद्रा लिए बिताई।
मन मयूर सब नाच रहे हैं खोई निधि हो पाई जी॥

बार बार वे छतों पे चढ़ चढ़ काशी मार्ग निहारे।
किसी काम में मन न लगे जन घूमे इत उत सारे जी॥

दिया सुनाई शोर गगन में दौडे सब नर नारी।
ऊपर चढ चढ लगे देखने दृश्य था विस्मयकारी जी॥

महाराज संग विश्वामित्र की हो रही जय जय कार।
पुष्प वृष्टि कर रहे देवता मन में खुशी अपार जी॥

अवध के बाहर आकर उतरा सीधा वह विमान।
अपने प्रिय राजा को देखने चहक उठे सब प्राण जी॥

निकल निकल निज घरों से दौड़े नगरी बाहर आये।
सधवा बहिनें खड़ी हो गई मंगल कलश सजाये जी॥

वृद्ध पुरुष भी रोक न पाये अपने को निज घर में।
राज मार्ग में आ खडे हो गए यष्टि लेकर कर में जी॥

हाथी घोडे रथ पैदाती सज धज सम्मुख आये।
हलचल मच गई पूरे शहर में हर मन खुशी मनाये जी॥

जय जय की मंगल ध्वनि के संग हुआ नगर प्रवेश।
बाजे बज रहे नृत्य नाच्र रहे चारण गीत विशेष जी॥

गगन भेदी जय ध्वनियों के संग राज प्रांगण मे आये।
तिल रखने को जगह नहीं है आंगन ही भर जाये जी॥

भव्य लगा दरबार तत्र अब सर्व प्रथम ऋषि बोले।
बोले क्या अमृत बरसाया, भाव हृदय के खोले जी॥

नृप ने दान किया था मुझको अवध पुरी का राज।
पुनः सौंपता हूँ मैं इनको हर्ष सहित यह आज जी॥

मेरे कारण राजा रानी हुए प्रजा से दूर।
सबके ही मन कष्ट यह जो, करूं आज मैं चूर जी॥

नृप के सत्य सामने मेरा तप जप ठहर न पाया।
गृहस्थ में भी इतनी शक्ति ध्यान आज ही आया जी॥

महाक्रोध के कारण बुद्धि न स्थिर मेरी रह पाई।
धन्य धन्य है महीपति को सरल दृष्टि अपनाई जी॥

शान्त भाव से बैठ के मैंने जब जब मन में विचारा।
सच कहता हूँ मुझको मेरे मन ने बहुत धिक्कारा जी॥

भूप कृपा से नष्ट हुए हैं कुमति क्रोध, अभिमान।
स्वीकार आज करता हूँ मैं कि भूपति यह महान् जी॥

पुनः साधना में लगना है लिया हृदय में धार।
राजन्! कर स्वीकार राज्य, करिये मुझ पर उपकार जी॥

सभी ओर सिर घुमा के बोले क्या राजा इन्हें बनाये।
हरिश्चन्द्र हो भूप हमारे आवाज एक ही आये जी॥

शचिपति ने भी किया समर्थन सुनो सुनो महाराज।
भूप रूप में चाहे देखना सब ही आपको आज जी॥

देवेश! आप भी ऐसा कह ना करे सत्य से दूर।
हाथ जोड़ है विनम्र विनती करे नहीं मजबूर जी॥

अच्छा तो फिर सुनिये राजन्! मध्य की राह निकाले।
ऋषि रोहित को राज्य दे रहे उसको आप संभाले जी॥

जब तक सक्षम हो न जाये यह संरक्षक बन आप।
अवध प्रजा की सेवा करके हरियें सब का ताप जी॥

अधिक देख आग्रह भूपति ने बात यह स्वीकारी।
आदेश आपका मैं मानू पर है रोहित अधिकारी जी॥

गूंज उठा नभ जय जय ध्वनि से हर्ष हृदय में छाया।
सुमन वृष्टि करके देवों ने दुंदुभि नाद सुनाया जी॥

स्वयं इन्द्र ने प्रसन्न होकर किया रोहित अभिषेक।
प्रमुदित हुई प्रजा रोहित सिर राजमुकुट को देख जी॥

विश्वामित्र जी सबके सामने स्वस्ति पाठ सुनाये।
अभिषेक क्रिया संपन्न हुई तब सुरपति भाव जताये जी॥

देवसभा में एकदा मैंने सत्य की महिमा गाई।
सत्यवादी नृप हरिश्चन्द्र सा देता नहीं दिखाई जी॥

इस सत्य स्तुति पर देव एक विश्वास नहीं कर पाया।
चलित सत्य से करने सुर ने यह कुचक्र चलाया॥
लेकिन आप सब देख रहे हैं डिगा नहीं वह पाया ।
सच है अद्भुत और अनोखी जग में सत्य की माया जी॥
आज स्वयं मैं भूपति के गुण गाते नहीं अघाऊँ।
सत्यपूत इस स्वच्छ ज्योति के दर्शन कर सुख पाऊं जी॥
युगों युगों तक अवध सहित सौरभ तो नृप की रहेगी।
धर्म और इतिहास पंक्तियां इनकी कथा कहेगी जी॥
जब तक जल सागर के अन्दर नभ में चमके तारे।
सत्यवादी कह हरिश्चन्द्र को हर युग सदा पुकारे जी॥
गद्गद् आज स्वयॅ मैं भी हूँ इनके दर्शन पाकर।
सत्य धर्म का गान गाइए आप सभी हरसा कर जी॥
हाथ जोडते देवराज ने विदा वहॉ अब चाही।
विश्वामित्र भी बने है अब तो वापस वन के राही जी॥
इन्द्र सहित सब देवों ने सुर लोक किया प्रस्थान।
प्रजाजनों के चेहरों पर भी आज नई मुस्कान जी॥
कई दिनों तक अवधपुरी में नृत्य गान रहे चलते।
खुशी पूरी होती नहीं उनकी रहे दीप नव जलते जी॥
संरक्षक बन हरिश्चन्द्र नृप अवध का राज्य चलाये।
शीत, ग्रीष्म, वर्षा से प्रकृति नव बहार वहॉ लाई जी॥
प्रजा सुखी सुखी राजा है रखे सत्य आधार।
प्रत्यक्ष धर्म प्रभाव देखकर श्रद्धा जगी अपार जी॥

अन्न धन की कुछ कमी नहीं है जन सारे खुशहाल।
अन्याय दुःख का तेग करे क्या धर्म जहॉं है ढाल जी॥

दोहे

कर्म-कटे बिन ना मिले, मुक्ति का आलोक।
इसीलिए उत्तम कहा, जाता मानव लोक॥

नर तन पा नहि लाभ ले, वह पीछे पछताय।
भव भव भटके जीव यह शान्ति नहीं मिल पाय॥

नर जीवन अनमोल हैं, करिये निज उत्थान।
तप जप अरु स्वाध्याय से होय तिमिर अवसान॥

पूर्ववत्

मुट्ठी से ज्यों रेत निकलती समय निकलता जाये।
देख मुकुर में श्वेत शिरोरुह नृप मन उदासी छाये जी॥

शुभ कर्मों के उदय से मैंने मानव का तन पाया।
तीनों आश्रम बने निरर्थक चौथा नहीं बनाया जी॥

बोझ औरों का ढोते ढोते कितना जीवन बीता।
पर संवेग निर्वेद भाव से अधुनापि मन रीता जी॥

मर मर रहा जनमता अब तक चक्कर यह ना टूटा।
कर्म शत्रु ने शक्ति लगा कर मुझको खुल कर लूटा जी॥

जब तक मोह घेरे से बाहर निकल नहीं मैं पाऊं।
मंजिल मेरी मिले तभी जब संयम को अपनाऊं जी॥

नहीं भरोसा काल बली का जाने कब आ जाये ।
समय के रहते जगे नहीं वह हानि सदा उठाये जी ॥

श्वेत शिरोरुह बता रहे जगने की बेला आई।
नश्वर तन, धन,, जन से मोह की चादर दे तू हटाई जी॥

इच्छाएं तो उदधि जैसे कभी नहीं भर पाये।
माया में सुख ढूंढे जो क्या तेल रेत से पाये जी॥

महत्वपूर्ण कार्यो को तज कर महत्त्वहीन जो करते।
वे ही मूरख काल कूप के घर पर पानी भरते जी॥

इन सांसों का नहीं ठिकाना कब हो जाये बन्द।
जीवन फटा बसन तो नहीं जो लग जाये पेबन्द जी॥

जाकर मन के भाव अभी मैं रानी को बतलाऊं।
राज्य भार रोहित को देकर संयम पथ अपनाऊं जी॥

त्वरित कक्ष से चलकर राजा आया तारा पास।
आज और था रंग वदन का भरा हृदय उल्लास जी॥

नृपने ने कहा, तारा से रानी! सुत है योग्य हमारा।
जग प्रंपचों से अब हमको कर लेना चाहे किनारा जी॥

स्वामी! आपने मेरे मन की बात को लिया है छीन।
बिना साधना के यह जीवन लगता मुझको दीन जी॥

आप चलेंगे जिस पथ पर वही होगी मेरी राह।
सच कहती हूँ मेरी अपनी स्वामी कोई न चाह जी॥

राज भवन में रहकर सच्चा त्याग नहीं कर पाये।
बिना पानी में उतरे कोई नहीं तैराक कहाये जी॥

धन्य धन्य है रानी तुझको इस पथ पर भी सहयोग।
एक जैसे ही विचार अपने यह भी पुण्य संयोग जी॥

स्वामी! अब अबशेष समय घर में नहीं अधिक बिताये।
जितना जल्दी हो इस पथ पर अपने कदम बढ़ाये जी॥

तारा के मुख से शब्दों की निकली शुभ स्वर लहरी।
तभी आ गया रोहित वहाँ पर लांध कक्ष की दहरी जी॥

तात मात किस चिन्ता में हो यह कैसा सन्नाटा।
अब तक हमने साथ साथ रह सुख दुख सदा ही बांटा जी॥

दुनिया के दुश्मन तो मारे कर्म शत्रु नहीं मारे।
यही चिन्ता मन छाई हमारे प्यारे राज दुलारे जी॥

कहते कहते खुशी के ऑसू हरिश्चन्द्र के आये।
रोहित पाँव पकड़ कर बोला शब्द न ऐसे सुनाये जी॥

तात! बात यह सुन मेरा तो मन आहत है होता।
मैं निश्चिंत आपके पीछे सुख निद्रा में सोता जी॥

कटुक निंबोली सी लगती है यह तो आपकी बात।
बुला रहे क्यों रजनी को रहने दो अभी प्रभात जी॥

वृद्धावस्था में ही सुत से पड़े पिता को काम।
सेवा कर वह मात तात को पहुँचाये आराम जी॥

अब तक तो सेवा का अवसर मैंने नहीं है पाया।
तात! यह कह करके क्यों मन मेरा दुखी बनाया जी॥

समय के रहते जागे चेतन भव वह सफल बनाये।
पनघट से घट खाली लेकर मूर्ख नर ही जाये जी॥

त्याग की रस्सी तप की डोली ज्ञान का भरलूं नीर।
शील शिला पर संयम साबुन धोलूं आत्म चीर जी॥

करना था जो कर चुका मैं अब नहीं है कुछ अबशेष।
जन्म मरण का चक्र मिटाना यही काम है शेष जी॥

इसे भी पूरा कर लूं बेटे! संध्या सरकती आये।
संयम दीप जलालूं जल्दी रात न काली छाये जी॥

रेत के ऊपर बनी लकीरें हवा चले मिट जाये।
पल का नहीं भरोसा बेटे! सांसें कब रुक जाये जी॥

काल बाज आकर जीवन की चिड़िया लेय दबोच।
कौन बचा पायेगा हमको सुत मेरे कुछ सोच जी॥

इस नर जीवन में ही होता है भवसागर से तिरना।
जन्म-मरण की पीड़ा अनादि अब हमको तो हरना जी॥

अवधपति बनकर अब तुमको निज कर्त्तव्य निभाना।
प्यारी प्रजा के हित में हरदम अपने कदम उठाना जी॥

न्याय नीति से प्रजा की हरपल सेवा करते रहना।
सत्ता के मद में आकर के नहीं कभी तू बहना जी॥

सेवक बन कर शासन करना सबसे प्रेम बढ़ाना।
भेद भाव की प्राचीरें तू जग में नहीं उठाना जी॥

पाप पनपने कभी न पाये रखना इसका ज्ञान।
सद्वृत्ति वालों का बेटे! करना नित सम्मान जी॥

सन्त, मनीषी, चिन्तक या फिर हो कोई विद्वान्।
जिस जिस को सहयोग चाहिए देना ससम्मान जी॥

भाव अहिंसा के ही जागे हिंसा पनप न पाये।
नर, पशु से ले पादप तक पर दया भाव दिखलाये जी॥
वैसे सभी तरह से तुम तो योग्य हो बेटे! मेरे।
लेकिन सूरज के होते भी बादल आते अंधेरे जी॥
शासक यदि कमजोर बने तो दाव दुष्टों का लगता।
इसलिए राजा को चाहिए रहे वह नित जगता जी॥
तात! आपकी बातें सब सच्च पर मन नहीं है माने।
मात आप तो अपने सुत की पीड़ा को पहचानें जी॥
तात जा रहे संयम पथ पर चलो मुझे मंजूर।
लेकिन तुमको कैसे करुंगा मैं आंखों से दूर जी॥
हृदय फटा जाता है माता सुन ऐस उपदेश।
अगर यही तो मुझे भी संग दो चलने का आदेश जी॥
निज कर्त्तव्य तुम्हारा क्या है तात ने अभी बताया!
यही धर्म का पथ है पावन सबने यहाँ निभाया जी॥
किसके भरोसे प्रजाजनों को छोड़ यहाँ तू जाये।
निज कर्त्तव्य भूलने वाला नृप भू बोझ कहाये जी॥
चौथा आश्रम जब आयेगा तू चाहे मत रुकना।
मोह माया की प्राचीरों के आगे तू मत झुकना जी॥
हर्षित होकर हमको बेटे! खुशी खुशी पहुचाओ।
निर्णय अडिग हमारा अब तो आंसू नहीं बहाओ जी॥
ऐसा कह करके तारा ने सुत को गले लगाया।
आंचल से अश्रु थे पौछे बालों को सहलाया जी॥

नृपति बोला-स्नान ध्यान कर रोहित हो ओ तैयार।
राजसभा में रखना मुझको अपना आज विचार जी॥

दैनिक कार्यों से हो निवृत्त तीनों सभा में आये।
सेवक, सेनापति, सचिव सब बैठे शीष झुकाये जी॥

महाराज ने सभासदों को मन का भाव सुनाया।
सभा स्तब्ध रह गई यह सुन कर बोल न कोई पाया जी॥

तनिक देर के बाद मंत्री ने सन्नाटां वहाँ तोड़ा।
स्वामी! अचानक हमें छोड़ क्यों मुक्ति से मन जोड़ा जी॥

रोहित योग्य हो गया है नहीं चिंता की बात।
साधना पथ पर मुझे बढ़ना महारानी के साथ जी॥

रोहित शीष झुकाये बैठा सुनता था बात।
पक्का निर्णय देख दोनों का लगा हृदय आघात जी॥

भव्य आत्माएं जो थी वहाँ सुन भूपति के भाव।
वैराग्य रंग में रंगी वे उस क्षण लगा मुक्ति का चाव जी॥

उठकर बोले भरी सभा में हम भी आपके साथ।
झूठा है जंजाल जगत का अच्छा जगाया नाथ जी॥

शुभ मुहुर्त में महाराज ने उतारा अपना ताज।
तेरे भरोसे आज प्रजा सुत करना सुख से राज जी॥

अब आज्ञा दो हमें संयम की करो न बेटे! देरी।
लेकर दीक्षा करें साधना काटे भव की फेरी जी॥

रोहित सोचे करुं क्या अब मैं रुके न ये तो रोके।
तो फिर उत्सव करुं मैं इनका बहुत बड़ा इस मौके जी॥

रोहित ने अब महामंत्री को अपने निकट बुलाया।
दीक्षा का उत्सव कैसे हो सारा ही समझाया जी॥

सारा नगर सजाया जाये हो जल की छिड़काव।
ताकि धूल ना उड़ पाये जले न नंगें पांव जी॥

घर, गलियों, बाजारों में नव बन्दनबार बंधाये।
जगह जगह स्वागत करने को भव्य द्वार बनवाये जी॥

नगर के बाहर है जो उपवन अनुपम उसे सजाओ।
मण्डप सुन्दर भव्य बने बस उपक्रम यह कराओ जी॥

निर्धन इस नगरी में रहे ना राजकोष को खोलो।
ले जाये जिसको जो चाहे हर चौराहे बोलो जी॥

स्वामी! आपकी हर आज्ञा का पालन होगा पल में।
देता हूँ आदेश अभी मैं बात क्यों छोडूं कल पे जी॥

राजा रोहित की आज्ञा से नगर सजा है सारा।
रात आई पर आ नहीं पाया वहाँ पर तो अंधियारा जी॥

इस उत्सव पर राज महल में बजने लगी मृदंग।
गूंज उठी शहनाई आंगन जमने लगा नव रंग जी॥

सप्त स्वरों में वीणा गूंजी ढोलक पर पड़ी है थाप।
हवा हो गया जैसे सबके मन का ही संताप जी॥

दीक्षा लेने वालों के घर दूत भूप भिजवाये।
रथ में बिठा के उनको सादर राजमहल में लाये जी॥

स्वागत करके उनको रोहित दे आसन बिठवाता।
अपने हाथ से सभी जनों को प्रातराश करवाता जी॥

स्वर्ण घटों में अब कहार भी जलभर करके लाये।
दास दासियां सुमन की सौरभ उसमें खूब मिलाये जी॥

सरयू के इस पावन जल से सबको स्नान कराओ।
धुले वसन पहना के सबको केसर यहीं छिटकाओ जी॥

राजा रानी दीक्षित होने उतर महल से आये।
जैसे विहग पुराने घर को त्याग स्वयं हरसाये जी॥

साथ हजारों हैं नरनारी हर्षित हृदय अपार।
गूज रहा है नभमण्डल में उनका जय जयकार जी॥

मंगल बेला, वाद्य भी मंगल, मंगल है हर काज।
दीक्षा लेने वाले मनुज पर सबको ही है नाज जी॥

नृप के पीछे सब वैरागी, वैरागिन तारा पीछे।
प्रेम के रस से वहाँ सभी जन मन की बगिया सोचे जी॥

कुछ कहते कि अवधपुरी का जाग गया है भाग्य।
इतने नरनारी में आया एक साथ वैराग्य जी॥

कोमल दिल वालों की आंखें देख दृश्य भर आई।
हमें छोड़कर ये तो जा रहे, मन में उदासी छाई जी॥

मगल गीत नारिया गाती, छींटे केसर घोल।
आगे आगे खुश होकर बजा रहे थे ढ़ोल जी॥

कुछ कहते मन मेरा भी है पर मैं अभी न लूंगा।
अगली बार आया जो मौका जाने कभी न दूंगा जी॥

कुछ कहते हम जैसों के तो बस की नहीं है बात।
शूलों पर चलना है इनको यह नहीं को ई बारात जी॥

कोई कहता संकल्प अगर दृढ वह न कभी घबराये।
शूलों के मग भी उसको फूलों सम दिखलाये जी॥

अवधपुरी में ऐसा महोत्सव पहली बार ही देखा।
इससे पहले कभी हुआ हो पास न कोई लेखा जी॥

सावन में बादल उमड़े ज्यों उमड़ पड़ी है जनता।
दूर दूर से चले आ रहे समाचार जो सुनता जी॥

महाराज की महिमा भी तो कई योजन तक फैली।
क्यों ना आये अवध के अन्दर घड़ी आई अलवेली जी॥

चलता चलता जुलूस तो उपवन के मध्य है आया।
एक बड़े मैदान के अन्दर मण्डप भव्य बनाया जी॥

दीक्षा लेने वाले सारे पहुँच मंच पर जाये।
हरिश्चन्द्र ने कहा पुण्य से ही ऐसा दिन आये जी॥

विषय वासना के कीचड़ से निकल गया जो प्राणी।
आतम उसका ही जगता जो सुनता प्रभु की वाणी जी॥

अरिहन्तों की वाणी जग में तारने वाली जहाज।
हमको यह सौभाग्य मिला कि बैठ रहे हैं आज जी॥

हम से कोई भूल हुई तो क्षमा आपसे चाहें।
आज से आप और हमारी अलग अलग है राहे जी॥

इक मण्डप में गये हैं भाई, गई बहने इक ओर।
गृहस्थ वेश को वहाँ उतारा उत्कंठा का शोर जी॥

सावन के महीने में जैसे नील गगन धुल जाता।
मानो शशि नहा सागर में अम्बर पर चढ आता जी॥

निर्मल वेश किया है धारण संत सती वन आये।
सभा बीच में पहुंच के सारे मन में अति हरसाये जी॥

सकल सावद्य क्रियाओं का अब किया है प्रत्याव्यान।
आजीवन व्रत को पालेंगे करें प्रभु का ध्यान जी॥

देखते देखते कुछ ही समय में विधिवत् हो गये संत।
नारी रत्नों ने अपनाया पावन प्रभु का पंथ जी॥

पॉच महाव्रत, पॉच समिति, तीन गुप्ति अब पाले।
पंचाचारी बन कर जग में जीवन शेष निकाले जी॥

शुद्ध साधना करके हम सब कर्मो की जड़ काटे।
विषय कषायों के सागर को जप तप से नित पाटे जी॥

आज्ञा बिना किसी की वस्तु छूना समझो पाप।
प्रेमीजन का भी हो वियोग तो हम ना करें विलाप जी॥

सूर्यास्त बाद में आजीवन हम अन्न जल कभी न लेंगे।
दया दान के उपदेशों को घूम घूम नित देंगे जी॥

अपने हाथ से आग जलाकर भोजन नहीं बनाये।
करे गोचरी बस्ती में बस जो मिल जाये खाये जी॥

ज्यों पंकज रहे पंक में निर्लिप्त हमें भी रहना।
बाईस परीषह आए कोई हंस हंस हमको सहना जी॥

फूल मिले या शूल मिले अब छॉव मिले या धूप।
समता भाव रहेगा हरपल रंक मिले या भूप जी॥

दीक्षा विधि संपन्न हो गई करे सन्त प्रस्थान।
चली सती तारा सतियों संग सूना हुआ उद्यान जी॥

अवधपुरी सीमा तक जनता साथ साथ है जाये।
हरिश्चन्द्र मुनि ठहर के उनको मंगल पाठ सुनाये जी॥

एक दिशा में संत बढे हैं, अन्य में सतियां जाये।
तात मात को देख बिछुड़ते रोहित अश्रु बहाये जी॥

बोझिल मन से पुनः लौट सब अवधपुरी में आये।
सब कुछ फीका लगा वहाँ तो देख हृदय मुरझाये जी॥

धन्य धन्य है महाराज ने संयम पथ अपनाया।
रजकण समझ जगत का वैभव पलभर में ठुकराया जी॥

यह जग का आनन्द है थोथा वे पाये मुक्तानन्द।
कर्मद्वार को तप के द्वारा कर देगे अब बन्द जी॥

सती तारा मुनिहरिश्चन्द्र अब जहाँ जहाँ भी है जाये।
स्वागत करने जनता नगर की चली दूर तक आये जी॥

अवधपति थे एक दा जो दिया राज्य ही दान।
श्रमण रूप में करे गोचरी ना सोचे मान अपमान जी॥

जैसा जितना जो मिल जाये उचित समझ कर लेते।
श्रमण रूप में जीवन नोका हर्षित मन से खेते जी॥

उपदेशों में कहते मुनिवर कर्म न बांधे आप।
बड़ा ही मुश्किल होता भोगना पापों का यह ताप जी॥

समता, शील, संतोष, जगाकर गीत दया के गाते।
सत्य, अहिंसा, अनेकान्त का अमृत नित्य पिलाते जी॥

स्याद्वाद का झण्डा निशदिन संत सती फहराते।
नव तत्व सहित षड् दर्शन की कर व्याख्या समझाते जी॥

त्याग, तपस्या, सामायिक के गूंजे घर घर गीत।
बने कई स्वाध्यायी भाई करे धर्म से प्रीत जी॥

दुर्व्यसनों से सहस्त्रों ने ही खुद को मुक्त बनाया।
उतर पानी में क्या कोई भी बिन भीगा रह पाया जी॥

अन्त समय सबका ही आये रोके रुके न काल।
जल में डूबी रहे सतत पर सूखे हरियल डाल जी॥

व्रत, उपवास, तेला, आयंबिल होने लगी अठाई।
मास मास उपवास करे वे तन को दिया सुखाई जी॥

तन से वे कमजोर बने पर मन में तेज समाया।
दिव्य रूप का करके दर्शन जन मन ने सुख पाया जी॥

तप की आग से पाप कर्म सब उनके है विरलाये।
धुला मैल आत्मा का उनका शुद्ध चेतन प्रगटाये जी॥

घाती कर्म कर क्षीण उन्होंने गुणस्थान तेरहवां पाया।
केवलज्ञान अरु केवल दर्शन क्षण में प्रगटाया जी॥

वर्षों तक केवल पर्यायी रहे हरिश्चन्द्र तारा।
आयुष कर्म पूरा होने का बजने लगा नगारा जी॥

आयु कर्म जब पूरा होता होती देह निष्प्राण।
मृत आत्मा हो जाती है पाती परम कल्याण जी॥

केवल ज्ञानी देह में रहकर रहते सदा विदेह।
काया माया से तिलभर भी रहता नहीं है स्नेह जी॥

हरिश्चन्द्र निर्वाण प्राप्त कर सिद्ध अमर पद पाये।
अन्य संत सतियों ने भी निज करणी के फल पाये जी॥

अब तक कितने बीत गये युग अपने तक ना जाने।
संत सती हो गये है कितने आये कौन बताने जी॥

श्रमण श्रमणी ने सदा जगत में निज कल्याण किया है।
विमल वाणी से आत्मशुद्धि का नित संदेश दिया है जी॥

आदिनाथ ने दीप जलाया उसका यह प्रकाश।
महावीर तक आते आते जागा नव उल्लास जी॥

कई करवटें ले जैन धर्म तो आज यहाँ तक आया।
कितने चक्रवात आये पर यह न सुमन मुरझाया जी॥

श्वेताम्बर के साथ दिगम्बर इसके हुए दो भाग।
स्थानक वासी मूर्ति पूजक सबसे खिला यह बाग जी॥

वर्तमान स्थानकवासी जो सुन्दर रूप सुहाया।
धर्मदास आचार्य प्रवर ने इसको खूब सजाया जी॥

परम्परा के चलते चलते नानक गुणी हैं आये।
उनके गच्छ में पन्ना गुरुवर युग चेता कहलाये जी॥

आगम ज्ञानी ज्योतिर्विद् गुरु कुन्दन बने महान्।
आचार्य प्रवर श्री सोहन गुरु से बढ़ी पंथ की शान जी॥

वर्तमान आचार्य सुदर्शन संघपति बने हमारे।
इस सुन्दर उपवन में खिल रहे सुमन कई हैं प्यारे जी॥

गुरुवर्या उमराव कँवर ने चुना यह शुभ पंथ।
जन जन की श्रद्धाकेन्द्रा है गुरुवर्या जयवंत जी॥

विमल यशस्वी गुरुवर्या ने संघ की शान बढ़ाई।
तभी तो संघ ज्योति की पदवी ब्यावर में थी पाई जी॥

उनकी महती कृपा ने मुझको आगे सदा बढ़ाया।
संयम ज्ञान साधना वट जो मिली मुझे तो छाया जी॥

बांध सरेरी जन्म भूमि में कलम थी मैंने उठाई।
गुलाबपुरा के वर्षावास में पावन कथा सुनाई जी॥

विक्रम दो हजार सत्तावन अश्विन श्रेष्ठ है मास।
शरद् पूर्णिमा पूर्ण काव्य कर भरा हृदय उल्लास जी॥

हरिश्चन्द्र की कथा रसीली पढ़ सुन आत्म जगाये।
सत्य धर्म से जुड़े रहे सब जीवन सफल बनाये जी॥

धर्म ही जग में सच्चा धन है जो पाये इंसान।
"कमलप्रभा" पाकर के धर्म धन बने मनुज भगवान् जी॥

दोहा

हरिश्चन्द्र जैसा नहीं हुआ भूप तो अन्य।
मानो ध्रुव तारा उतर धरा कर गया धन्य॥

